योगविद्या

वर्ष 5 अंक 6
जून 2016
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2016

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या: 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो: गंगा दर्शन विश्व योगपीठ, मुंगेर

अन्दर के रंगीन फोटो: 1, 3 & 4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती; 2: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

योग और विज्ञान

योग और विज्ञान परस्पर सम्बन्धित हैं। योगी मानसिक शक्तियों को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, जबकि वैज्ञानिक भौतिक ऊर्जाओं को। वैज्ञानिक एक दृष्टि से राजयोगी ही हैं, अन्तर केवल इतना है कि उनकी बुद्धि और एकाग्रता बाह्य जगत् पर ही केन्द्रित रहती है।

वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों को भली-भाँति समझ भी लें, परन्तु उन्हें प्रकृति की उत्पत्ति और स्रोत के विषय में कुछ नहीं मालूम। किसने यह सूर्य बनाया और किसने उसकी किरणों को ऊर्जा दी? किसने इलेक्ट्रॉनों को ऊर्जा प्रदान की? विज्ञान को इन महान् रहस्यों के बारे में कुछ नहीं मालूम।

इसके विपरीत योग पूर्ण ज्ञान है। योगी को दिव्य आन्तरिक अनुभूति प्राप्त होती है। वह अपनी प्रज्ञा-दृष्टि से पदार्थ और प्रकृति की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर लेता है। उसका पंच-तत्त्वों पर नियन्त्रण होता है। वह इस संसार का रहस्य अन्तर्ज्ञान से समझ लेता है।

—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 5 अंक 6 • जून 2016
(प्रकाशन का 54 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 आध्यात्मिक उपचार
8 समन्वित योगाभ्यास
15 सत्यम् वाणी
31 सामाजिक परिवर्तन का माध्यम-योग
40 जेलों में योग के प्रयोग
46 योग का नूतन आयाम-प्रसन्नता एवं जप
49 अनुपम अनुभव
51 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

आध्यात्मिक उपचार

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सामान्यत: मानसिक उपचार को ही आध्यात्मिक उपचार समझा जाता है, किन्तु ऐसा समझना गलत है। मानसिक उपचार एक सरल प्रक्रिया है। इसमें मन को एकाग्र करते हुए संकल्प शक्ति को कुछ हद तक विकसित किया जाता है। यह स्थिति उतनी ही आसानी से प्राप्त की जा सकती है जितनी सहजता से एक व्यायामी व्यायामशाला में शारीरिक गतिशीलता में दक्षता प्राप्त करता है। यहाँ उपचारक का दिव्य इच्छा से तनिक भी सम्पर्क नहीं होता, क्योंकि वह तो वस्तुत: अपनी व्यक्तिगत इच्छा से ही कार्य कर रहा होता है। मेरी जानकारी में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ जादुई शक्ति तथा मन्त्र सिद्धि द्वारा किसी रोगी का बलपूर्वक उपचार करने एवं इस प्रकार दिव्य इच्छा की अवहेलना करने के कारण उपचारक को कष्ट झेलना पड़ा है। ऐसा करना कदापि उचित नहीं है।

आध्यात्मिक उपचार एक पूर्णत: भिन्न प्रक्रिया है। उपचारक अपनी इच्छा को दिव्य इच्छा में विलीन कर देता है तथा अपने एवं रोगी के अन्दर स्थित ईश्वर से, जो एक ही है, तादात्म्य स्थापित करता है। स्वार्थरहित, निष्कपट एवं मौन प्रार्थना द्वारा वह रोगी के अन्दर ईश्वरीय शक्ति को जगाता है। वस्तुत: रोगी के अन्दर जागृत यह अन्त:शक्ति ही, चाहे वह थोड़ी देर के लिए ही क्यों न जगी हो, उसका उपचार करती है।

अब दोनों पद्धतियों के विशाल अन्तर पर विचार कीजिए। आध्यात्मिक उपचार से रोगी केवल रोगमुक्त ही नहीं होता, बल्कि निश्चित रूप से ईश्वराभिमुख भी होने लगता है। उपचारक अनुभव करता है कि उपचार तो वस्तुत: ईश्वर द्वारा ही हुआ है। उसके अन्दर अहंकार का अभाव रहता है। इस प्रकार के प्रत्येक उपचारक प्रयास के बाद उसका आध्यात्मिक विकास होता है। ईश्वर की कृपा एवं महिमा में उसका विश्वास बढ़ता है।

यदि आप आध्यात्मिक उपचार में सिद्ध होना चाहते हैं तो याद रखिए कि शुद्ध आत्मा के व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप पर ध्यान ही महान् सफलता की कुंजी है। यह याद रहे कि सबके अन्दर एक ही आत्मा या ईश्वर का निवास है। बीमार एवं दु:खी लोगों के लिए अपने हृदय को निष्कपट प्रार्थना एवं नि:स्वार्थ सेवा द्वारा शुद्ध बनाइए। अपने विचारों को स्थिर और शान्त कीजिए। विचार, वाणी और कर्म में सत्यनिष्ठ बनिए। यह महत्त्वपूर्ण बात है। कड़ाई से आत्मसंयम का पालन कीजिए। कदापि क्षुब्ध मत होइए और कभी दूसरों की भावनाओं को ठेस मत पहुँचाइए। शुद्ध, शाकाहारी एवं सात्त्विक आहार ग्रहण कीजिए। बीमार

व्यक्ति के स्वास्थ्यलाभ हेतु हृदय से प्रार्थना कीजिए।

मन-ही-मन अहंकार से फूलकर ऐसा मत सोचिए कि आप एक महान्, उत्कृष्ट एवं नि:स्वार्थपूर्ण कार्य कर रहे हैं, या इस उपचार के परिणामस्वरूप आपको आर्थिक लाभ, प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा या आध्यात्मिक उत्कर्ष की ही प्राप्ति होगी। इस क्षेत्र में द्रुत एवं दीर्घकालीन सफलता का रहस्य पूर्ण नि:स्वार्थपरता में ही निहित है।

बीमार व्यक्ति के उपचार में ध्यान की भूमिका आश्चर्यजनक हो सकती है। स्वयं रोगियों द्वारा किया गया ध्यान अत्यधिक प्रभावी होता है। रोगी के कल्याणार्थ कोई दूसरा व्यक्ति भी ध्यान कर सकता है। इस विधि में ॐ का उच्चारण किया जाता है। एकान्त स्थान में भस्त्रिका एवं सुखपूर्वक प्राणायाम की कुछ आवृत्तियाँ कीजिए। पूरक करते समय अनुभव कीजिए कि ईश्वर की उपचारक शक्ति आपके अन्दर प्रवाहित हो रही है। कुम्भक के समय अनुभव कीजिए कि आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस ऊर्जा से आप्लावित हो रहा है। कुछ समय के लिए सोऽहम् मंत्र का जप भी आपकी चेतना को उच्च स्तर तक ले जाने में सहायक होगा।

तदुपरान्त रोगी की शय्या की बगल में बैठ जाइए और स्वयं को पूर्णत: शान्त बनाकर ध्यान कीजिए। बीमारी अथवा अन्य किसी भी प्रकार के विचार से मन को क्षुब्ध अथवा अशान्त न होने दें। अब आँखें खोलकर रोगी के हृदय पर ध्यान कीजिए और वहाँ अमर, निरोग एवं अविनाशी आत्मा की उपस्थिति का अनुभव करते जाइए। ऐसा अनुभव कीजिए कि जिस आत्मा का निवास आपके अन्दर है, वही रोगी के अन्दर भी अवस्थित है। दोनों को जोड़िए, एक को दूसरे में विलीन कर दीजिए। अब गहन ध्यान कीजिए। इस प्रक्रिया की समाप्ति के बाद कुछ मिनटों तक अनुभव करते जाइए कि ईश्वर की उपचारक शक्ति रोगी में समाहित हो गई है तथा वह पहले से बेहतर अवस्था में है। सान्त्वनादायक शब्दों द्वारा उसे आनन्दित कीजिए। आप पाएँगे कि इस उपचार के परिणामस्वरूप रोगी की अवस्था में तेजी से सुधार हो रहा है। इस प्रक्रिया की समाप्ति के बाद पुन: ध्यान कीजिए एवं स्वयं को ईश्वर की उपचारक शक्ति से पुनरावेशित कीजिए।

मन्त्रोपचार

जब एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचुरोपैथी, क्रोमोपैथी, आयुर्वेद इत्यादि समस्त चिकित्सा पद्धतियाँ आपको रोगमुक्त न कर सकें तो अन्ततः मात्र दिव्य 'नामपैथी' ही आपका कल्याण कर सकेगी। ईश्वर का नाम रोगोपचार हेतु अमोघ रामबाण है। दैनिक जीवन के संघर्ष से उत्पन्न उदासी, विषाद, निराशा या दुःख की स्थिति में इसे एक आदर्श दवा के रूप में अपना सकते हैं।

प्रभु के नाम में समस्त प्रकार की गूढ़, रहस्यमय एवं दिव्य अन्तःशक्तियाँ निहित हैं। यह सभी प्रकार के पुष्टिकारक तथा प्रशान्तक पदार्थों के सारतत्त्व से युक्त है। यह एक वर्णनातीत, रहस्यपूर्ण एवं दिव्य इन्जेक्शन है। आप किसी भी बीमारी के उपचार हेतु नाम-जप की औषधि का उपयोग स्वयं कर सकते हैं। आप अन्य रोगियों पर भी इस चमत्कारिक औषधि का प्रयोग कर सकते हैं।

रोगी की शय्या के पास बैठकर निष्कपट भक्ति एवं श्रद्धा से ईश्वर का नाम दोहराइये। ॐ नमः शिवाय, हरि ॐ या श्री राम जैसे किसी भी नाम को दोहराइये। आप *हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे* महामन्त्र का गान भी कर सकते हैं। ईश्वर की करुणा एवं कृपा हेतु प्रार्थना कीजिए। सभी व्याधियाँ एवं व्यथाएँ दूर हो जाएँगी। कम-से-कम दो घंटे के लिये, सुबह-शाम, नाम-जप के उपचार का प्रयोग कीजिए। थोड़े ही समय में आपको इसके चमत्कारिक परिणाम प्राप्त होंगे। प्रभु के नाम तथा उनकी कृपा में चिकित्सक तथा रोगी, दोनों की ही पूर्ण एवं अटूट आस्था होनी चाहिए। वास्तविक चिकित्सक तो प्रभु नारायण ही हैं।

तीनों लोकों के चिकित्सक तथा आयुर्वेद शास्त्र के प्रतिपादक भगवान धन्वन्तरि ने स्वंय घोषणा की है– 'ईश्वर के नाम की आवृत्ति ऐसी औषधि है जिससे सभी रोगों का निदान होता है। यह मेरी निश्चित एवं सत्यनिष्ठ घोषणा है।' समस्त प्रकार के उपचारों में प्रभु नारायण ही वास्तविक चिकित्सक हैं। आप पाएँगे कि किसी मरणासन्न राजा के उपचार में संसार के सर्वोत्तम चिकित्सक भी असफल हो जाते हैं। आपको ऐसे अनेक उदाहरण भी मिले होंगे जब अति प्रसिद्ध चिकित्सकों की निराशाजनक घोषणाओं के बावजूद, बहुत खतरनाक या मारक बीमारियों से पीड़ित लोगों के रोगों का भी चमत्कारिक निदान संभव हुआ। इससे स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि समस्त उपचारों के पीछे दिव्य हाथ ही होता है। ईश्वर के नाम से तो जन्म-मृत्यु नामक रोग का भी उन्मूलन होता है और अमरत्व की प्राप्ति होती है।

मेरठ के एक जमींदार का पुत्र गंभीर रूप से बीमार था। चिकित्सकों ने निराशाजनक घोषणा कर दी थी। तब भक्तों ने इस मामले को अपने हाथ में लिया। वे रोगी की शय्या की बगल में सात दिनों तक दिन-रात अखण्ड कीर्तन करते रहे। सातवें दिन रोगी उठ खड़ा हुआ और प्रभु का नाम गाने लगा। वह पूर्णतः रोग-मुक्त हो चुका था। दिव्य नाम की शक्ति इतनी महान् एवं चमत्कारिक होती है!

मन्त्रोपचार इस तथ्य की अनुभूति पर आधारित है कि वास्तविक चिकित्सक स्वयं ईश्वर हैं। चिकित्सक को केवल इतना करना है कि वह स्वयं एवं रोगी को ईश्वर से समस्वरित कर दे। मैं इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को दुहराता हूँ कि उपचार सर्वशक्तिमान् ईश्वर द्वारा ही होता है, हमारी व्यक्तिगत इच्छा से नहीं। हमारा कर्त्तव्य केवल इतना ही है कि हम जप, कीर्तन एवं प्रार्थना द्वारा प्रभु के अनुग्रह का आवाहन करें तथा रोगी के मन को उस सर्वशक्तिमान् संकल्पशक्ति से समस्वरित कर दें। प्रार्थना द्वारा इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।

छोटे पैमाने पर एक सत्संग का आयोजन कीजिए। जिस व्यक्ति के रोग का उपचार होना है उसे वहाँ अनिवार्यत: उपस्थित रहना चाहिए। वहाँ अधिकाधिक संख्या में उन्नत साधकों एवं भक्तों को एकत्रित करने का प्रयास कीजिए। उनके लिए यह जानना आवश्यक नहीं है कि सत्संग का आयोजन किसी के उपचार के उद्देश्य से किया जा रहा है। उन सबकी सामूहिक प्रार्थना से रोगी अत्यधिक लाभान्वित होगा।

सत्संग का प्रारम्भ 'ॐ' एवं 'जय गणेश' के उच्चारण तथा गुरु-कीर्तनों से कीजिए। हनुमानजी की शक्ति के आवाहन के बाद दस-पन्द्रह मिनटों तक महामन्त्र-कीर्तन कीजिए। यदि रोगी गम्भीर रूप से बीमार न हो तो उसे भी कीर्तन में भाग लेना चाहिए। यथासंभव प्रयास करना चाहिए कि रोगी पूर्णत: शांत अवस्था में आ जाए और वह ईश्वर के अनुग्रह का श्रद्धापूर्वक चिन्तन करे।

जब आप आन्तरिक एकाग्रता का अनुभव करने लगें तब प्रभु से प्रार्थना कीजिए कि वे बीमार व्यक्ति पर अपनी कृपा एवं आशीर्वाद की वृष्टि करें। तदुपरान्त महामृत्युंजय मंत्र– *ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्, उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्*– का जप करें। प्रारम्भ में ऊँचे स्वर से इस मंत्र की अनेक आवृत्तियाँ करें। फिर कुछ मिनटों तक इसका मानसिक जप करें। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान सदैव अनुभव करते रहें कि प्रभु की कृपा से रोगी की व्याधि का निवारण हो रहा है। रोगी को भी ऐसा अनुभव करना चाहिए कि वह मन्त्र की महान् शक्ति से आवृत हो रहा है। अन्त में शान्ति मंत्रों को दोहराइए। पुन: कुछ मिनटों तक ध्यान करते हुए अनुभव कीजिए कि रोगी ईश्वर की कृपा से सम्पूरित हो चुका है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभु को समर्पित करके खड़े हो जाइए और उपचार प्रक्रिया को समाप्त कर दीजिए।

उपरोक्त प्रक्रिया की समाप्ति के बाद आप रोगी को पवित्र भस्म दे सकते हैं। ऐसा करते समय आप सशक्त मानसिक सुझाव दीजिए कि प्रभु की इच्छा से वह अवश्य नीरोग हो जाएगा।

आप सभी ईश्वर की शरण में ही जाएँ जो वास्तविक उपचारक हैं। उनके दिव्य अनुग्रह एवं आशीर्वाद से आप सबको शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त हो।

समन्वित योगाभ्यास

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग अति प्राचीन और विश्वव्यापी विज्ञान है। अगर आपने भारत, दक्षिण अमेरिका या अफ्रीका के मूल आदिवासियों का इतिहास पढ़ा है तो उसमें यह उल्लेख मिला होगा कि उन आदिवासियों का विश्वास था कि मन पदार्थ को नियंत्रित कर सकता है। हाल के कुछ दशकों में वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों ने अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयास किया है कि उन आदिवासियों के रहस्यमय कर्म-काण्डों का निहितार्थ क्या है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये धार्मिक अनुष्ठान बिल्कुल बाह्य आचार हैं, किन्तु इनके पीछे जो उनकी मानसिक और आत्मिक निष्ठा है वह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हजारों वर्ष पूर्व जब विश्व का नक्शा बिल्कुल भिन्न था, उस समय की सभ्यता ने यह जाना कि प्रत्येक मनुष्य में विलक्षणता होती है। उस जमाने के बुद्धिजीवियों ने उस रहस्यमयी वस्तु को मन और शरीर नहीं कहा। उन्होंने उसे ईश्वर भी नहीं कहा, जैसा आज के हिन्दू, मुसलमान या ईसाई कहा करते हैं। उन्होंने उस गुह्य पदार्थ को आंतरिक शक्ति कहा और उसे विविध प्रकार से रूपान्तरित करने की विधि सीखी, उस विधि को कायम भी रखा। उन्हें इस बात की जानकारी थी कि शरीर की बजाय हमारी अन्तरात्मा बेहतर तरीके से पदार्थ को नियंत्रित कर सकती है। उस प्राचीन सभ्यता ने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का अनुसंधान किया।

योग उसी साक्षात्कार और समझ का क्रम विस्तार है। हाँ, आज जो योग दिखाई पड़ रहा है, वह चीन, रूस या विश्व के अन्य किसी देश की नहीं, बल्कि भारत की देन है। भारत में भी उन महान् ऋषियों, गुरुओं, संत-महात्माओं और आध्यात्मिक पुरुषों से प्राप्त हुआ है जो हिमालय की गुफाओं में रहकर विभिन्न यौगिक प्रयोग करते रहे।

एक व्यावहारिक प्रणाली

जब हम तर्क और पुस्तकों के माध्यम से आंतरिक शक्ति को समझने की चेष्टा करते हैं तो इसे बौद्धिक विधि कहते हैं। इस बौद्धिक व्यायाम से इतना ही समझ में आयेगा कि आंतरिक शक्ति का अस्तित्व है, पर उसका समग्र बोध नहीं प्राप्त होगा। इस आंतरिक शक्ति पर अधिकार प्राप्त करने हेतु योगी की जीवन-प्रणाली अपनानी होगी और योगाभ्यास करना होगा।

जिस तरह फुटबॉल पर कुछ पुस्तकों का अध्ययन कर आप एक दक्ष खिलाड़ी नहीं बन सकते, उसी तरह योग भी एक व्यावहारिक शास्त्र है। सौ साल तक मेरे

व्याख्यान सुनकर भी आप किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेंगे अगर आप प्रायोगिक तौर पर कुछ नहीं करेंगे। हाँ, आपको इतना संतोष होगा कि आंतरिक शक्ति की जानकारी आपको प्राप्त हो गई। पर यह जान लें कि आंतरिक शक्ति का बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना योग का परम लक्ष्य नहीं है। योग का मुख्य उद्देश्य आपको उस शक्ति की अनुभूति कराना है।

योग का शारीरिक पक्ष

योग का विज्ञान, दर्शन और अभ्यास सार्वभौमिक है। यह किसी संस्कृति, परम्परा या धर्म के दायरे में सीमित नहीं है। योगाभ्यास प्रत्येक मनुष्य से सम्बन्ध रखता है। यह हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व, हमारे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक आयामों से संबंधित है। इस पृष्ठभूमि में चुनाव हमें खुद करना है। हम योग को किस प्रकार और क्यों स्वीकार करें। यदि हमारा शरीर अस्वस्थ है, हमारे स्नायु-तंत्र में असंतुलन है, हमारा रक्त-चाप घट-बढ़ रहा है, हमारा रक्त विषाक्त हो गया है, हमारी ग्रंथियों में असंतुलन आ गया है, तब हमें योग के शारीरिक पक्ष का चुनाव करना है और उससे संबंधित अभ्यासों को करना है।

गत चार-पाँच दशकों में भारत, अमेरिका, फ्राँस, पोलैण्ड, जर्मनी और जापान के वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष दिया है कि योगाभ्यास से स्नायु-तंत्र, श्वसन प्रणाली, पाचन-तंत्र, निष्कासन तंत्र और अंत:स्रावी ग्रंथियों जैसी शारीरिक प्रणालियों को नियंत्रित किया जा सकता है। इतना ही नहीं, विगत बीस वर्षों में शोध के आधार

पर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राणायाम द्वारा न सिर्फ आप अपने शरीर को प्राणवायु से भर लेते हैं, बल्कि आप अपने मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के उतार-चढ़ाव पर भी नियंत्रण प्राप्त करते हैं, अपने फेफड़े को स्वच्छ करते हैं और इससे हमारा स्नायु-तंत्र संतुलित होता है। प्राणायाम का प्रभाव इतने तक ही सीमित नहीं है। शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष भी दिया है कि जब हम बायीं नासिका से श्वसन करते हैं तो मस्तिष्क के दायें गोलार्द्ध की गतिविधियाँ तीव्र हो जाती हैं और जब दायीं नासिका से श्वसन करते हैं तो बायें गोलार्द्ध के क्रिया-कलाप में तीव्रता आ जाती है।

मनोवैज्ञानिक पहलू

यदि आप शरीर में सुधार लाना चाहते हैं तो आपको शरीर के लिए उपयोगी योगाभ्यासों का चुनाव करना होगा, लेकिन यदि आप तनाव और दबाव से गुजर रहे हैं, चिन्ताग्रस्त हैं, अवसाद, भय और मानसिक कुण्ठाओं से पीड़ित हैं तो आपको उन योगाभ्यासों को अपनाना होगा जो मनुष्य के मनोवैज्ञानिक व्यवहार से सम्बन्धित हैं।

परिवार और समाज में हम लोग ऐसे परिवेश में रहते हैं कि हमें अपनी भावनाओं का दमन करना पड़ता है। मानव जाति अपने आचरण और व्यवहार में स्वच्छंदता नहीं बरत सकती, क्योंकि समाज में पहले से ही बड़ी अराजकता और अनुशासनहीनता है। यदि आप हर आदमी को कह दें, 'जैसी इच्छा हो, सोचो और जो मर्जी हो, करो' तो समझ सकते हैं समाज में कैसी अराजकता फैलेगी।

इसलिए इस अनुशासनहीन समाज में आपको आत्मदमन करना पड़ता है। आप अपने भावों, विचारों, वासनाओं, क्रोध, घृणा, चिन्ता और प्रेम को दमित करते हैं। आप अपनी समझदारी को भी दबाते हैं। इस दमन से आपका मन तनावग्रस्त हो जाता है। मान लीजिए अपने घर का कचरा फेंकने का आपके पास कोई विकल्प नहीं। तब इस कचरे का क्या करेंगे? इसे अपने घर में ही जमा रखना होगा। आप एक दिन, दो दिन, दस दिन, एक महीना, दो महीना, एक साल, दो साल, दस साल तक घर के भीतर कचरे को इकठ्ठा करते जायेंगे। अंत में क्या होगा? कचरे से दुर्गंध आयेगी, देखने में बुरा लगेगा, छींक आयेगी, खाँसी आयेगी, उबकाई आयेगी। जो कचरा आपने अपने घर में अनेक सालों से जमा कर रखा है उसके अब दो ही विकल्प हैं। या तो उसे घर में ही रहने दीजिए और यातनाएँ सहिए या दरवाजे के बाहर कहीं ऐसी खुली जगह में फेंक आइये ताकि आपके पड़ोसियों को भी उसका दुष्परिणाम न भुगतना पड़े। इसी तरह आपको अपना मानसिक और भावनात्मक कचरा भी फेंकना है। मगर कैसे? आपको योग निद्रा और अन्तर्मौन जैसे योगाभ्यासों को चुनना होगा जिनका सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक व्यवहार से है।

आंतरिक शक्ति की जागृति

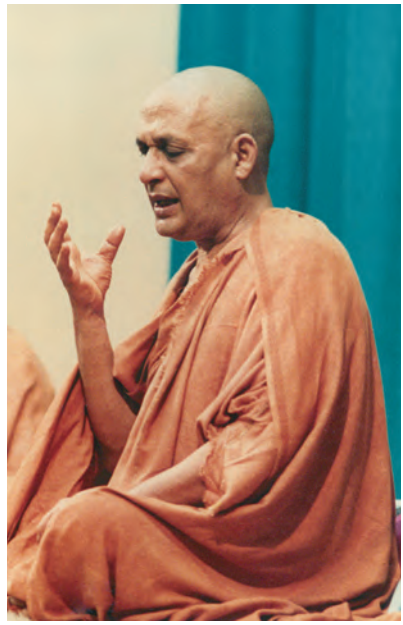

हाल में शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि मानसिक समस्याओं का निदान योगाभ्यास द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है। किन्तु यदि आप अपनी आंतरिक शक्ति को जागृत करना चाहते हैं, यदि आप मन के पीछे के मन का अनुभव करना चाहते हैं, मानव के पीछे के मानव से सम्पर्क साधना चाहते हैं, उस तत्त्व से साक्षात्कार करना चाहते हैं जिसका कोई रूप नहीं है, कोई नाम नहीं है, पर जिसमें गति है, आवृत्ति है, तो आपको कुण्डलिनी योग, क्रियायोग और तन्त्र शास्त्र के उन अभ्यासों का चुनाव करना होगा जिनसे उस आंतरिक शक्ति को जागृत किया जा सके।

शक्ति के क्रमबद्ध जागरण के लिए योगाभ्यास को कई चरणों में विभक्त किया गया है। सर्वप्रथम आपको अपनी शारीरिक प्रक्रियाओं को सुधारने के लिए हठयोग करना होगा। यदि आपके शरीर में विषैले पदार्थ भरे हैं और आंतरिक अंग-उपांग ठीक तरह से काम नहीं कर रहे हैं, यदि आपको कब्जियत है, जोड़ों में दर्द है, हृदय दुर्बल है, श्वसन क्रिया ठीक नहीं है, स्नायु-तंत्र में गड़बड़ी है और आपका मस्तिष्क उस शक्ति को संभालने में असमर्थ है, तो आप आत्म-जागरण कैसे कर पायेंगे?

यदि आप साधारण काँच के गिलास में उबलता पानी डालेंगे तो वह टूट जायेगा। उसके लिए आपको विशेष प्रकार का गिलास चाहिए जो उस गर्मी को बर्दाश्त कर ले। इसी तरह जब आत्म-जागरण घटित होता है तो शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है, हालाँकि शरीर का यह विषय नहीं है। याद रखें, आंतरिक शक्ति शरीर से बिल्कुल भिन्न है, फिर भी जब ऊर्जा का जागरण होता है तो शरीर उसके प्रभाव से अलग नहीं रह सकता है। स्नायु, फेफड़े, हृदय, पाचन-प्रणाली, पेशियाँ, हड्डियाँ, रक्तवाहिकाएँ, मस्तिष्क की कोशिकाएँ, सब कुछ उससे प्रभावित होते हैं।

शरीर में ऊर्जा का प्रवाह

इसलिए हठयोग में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध और शुद्धिकरण सम्बन्धी क्रियाएँ आत्म-जागरण के लिए अपरिहार्य शर्तें हैं। ऐसा नहीं कह सकते कि ये अभ्यास मात्र शारीरिक व्यायाम हैं। हठयोग की सही व्याख्या इस प्रकार नहीं की जा सकती।

गत वर्ष जापान की यात्रा के दौरान मेरी मुलाकात एक बड़े शोधकर्ता, डॉ. हिरोशी मोतोयामा से हुई। वे एक्यूपंक्चर विज्ञान पर कई वर्षों से शोध कर रहे हैं। बाद में उन्होंने ऊर्जा केन्द्रों पर योग के प्रभावों का अध्ययन शुरू किया। उन्होंने मेरी पुस्तक 'आसन प्राणायाम मुद्रा बंध' के प्रथम अध्याय में वर्णित पवनमुक्तासन समूह को बड़ा उपयोगी पाया है। पवनमुक्तासन बड़ी महत्त्वपूर्ण आसन प्रणाली है, लेकिन आम आदमी आसानी से इस बात पर विश्वास नहीं करेगा कि इन अभ्यासों का शरीर के ऊर्जा-प्रवाह पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे शरीर में इस प्रकार के ऊर्जा प्रवाह और केन्द्र हजारों की संख्या में हैं।

ये ऊर्जा-प्रवाह अनुकम्पी और परानुकम्पी स्नायु-तंत्र से जुड़े हैं, जो मेरुदण्ड में ही नहीं, संपूर्ण शरीर में जाल की तरह फैले हुए हैं। स्नायु-तंत्र से इस संबंध पर कौन विश्वास करेगा? यदि लोगों को ये अभ्यास सिखाए जाएँ तो वे कहेंगे, क्या सिखा रहे हैं? मैं कहूँगा, 'हम लोग योग सिखा रहे हैं। ये सिर्फ अंगुलियों, कलाइयों, केहुनियों और कंधों के व्यायाम नहीं हैं।' यदि आप योगासन को मात्र व्यायाम समझ लेते हैं तो आप योग के वैज्ञानिक पक्ष के साथ अन्याय करते हैं।

डॉ. हिरोशी मोतोयामा ने इन योगासनों का उपयोग अपने शोध में किया है। उन्होंने अपने शोध में एक यंत्र का निर्माण किया है जिसे वे 'चक्र मशीन' कहते हैं। चक्र वह स्थान है जहाँ स्नायु-पुंज और ऊर्जा-प्रवाहिकाएँ एक साथ मिलते हैं। कुण्डलिनी योग के ग्रंथों में षट् चक्रों का उल्लेख है। याद रखें, ये मुख्य चक्र हैं। चक्रों की कुल संख्या इतनी ही नहीं है। हजारों अन्य छोटे-मोटे ऊर्जा केन्द्र हमारे शरीर के अन्दर हैं जिनसे होकर ऊर्जा-प्रवाह चलता रहता है। ये एक्यूपंक्चर बिन्दु हैं।

इस प्रकार डा. मोतोयामा ने पवनमुक्तासन समूह के आसनों का उपयोग किया और इस पर अपनी मीमांसा भी लिखी है। यह पुस्तक जापानी भाषा में उपलब्ध है। मैंने इसके अंग्रेजी अनुवाद के लिए उनसे आग्रह किया है। जापान में यह विधि इतनी लोकप्रिय हो गई कि लोग दो प्रकार से एक्यूपंक्चर को अपना रहे हैं। एक प्रकार सुई चुभोकर ऊर्जा-प्रवाह को अवरुद्ध करने या उसे पुन: प्रवाहित करने का है और दूसरा प्रकार पवनमुक्तासन है। आप कह सकते हैं कि एक्यूपंक्चर पवनमुक्तासन की एक विधि है और पवनमुक्तासन एक्यूपंक्चर की एक क्रिया है।

योगासनों का उद्देश्य

योगासन मात्र व्यायाम नहीं है, इसे भूलें नहीं। मत्स्यासन का अर्थ मछली कसरत नहीं है, मयूरासन का अभिप्राय मोर कसरत नहीं है, शलभासन का अर्थ टिड्डी व्यायाम नहीं है, बल्कि टिड्डी के बैठने का ढंग है। आसन हम व्यायाम की तरह नहीं करते। हम अपने अंगों का संचालन अवश्य करते हैं, किन्तु आसनों का मांस-पेशियों अथवा जोड़ों से सीधा संबंध नहीं रहता। उनका संबंध शरीर के उन केन्द्रों

से रहता है जहाँ से ऊर्जा का अंगोपांग में वितरण होता है। योगासनों का उद्देश्य उन केन्द्र-बिन्दुओं से ऊर्जा को मुक्त करना है जहाँ उसके प्रवाह में अवरोध पैदा हो गया है। जहाँ कहीं भी ऊर्जा-प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न हो गया है, योगासनों से उसे दूर किया जा सकता है।

योग कक्षाओं में अभ्यासियों को बताया जाता है कि योगासन से आप बेहतर महसूस करेंगे। घर जाकर वे योगाभ्यास करते हैं और वाकई बेहतर महसूस करते हैं। क्यों? इसलिए कि ऊर्जा-प्रवाह जो कहीं अवरुद्ध हो गया था, योगासनों के फलस्वरूप चलने लगता है। आसनों से संबंधित इन महत्त्वपूर्ण बातों को समझना जरूरी है।

एक समन्वित क्रिया

यदि आपको अपने लिए कुछ आसनों का चुनाव करना पड़े तो इस बात का ख्याल रखें कि यह चुनाव आप अपने लिए कर रहे हैं, अपने विद्यार्थियों के लिए नहीं। यह बात मैं विशेष रूप से योग शिक्षकों को कह रहा हूँ। आपकी व्यक्तिगत-साधना और आपकी शिक्षण-प्रणाली, दोनों समान नहीं होंगी। अगर मैं कुण्डलिनी योग की साधना करता हूँ, तो यह आवश्यक नहीं कि यही चीज मैं अपने शिष्यों को बताऊँ। अपने शिष्यों को वही योग सिखाना चाहिए जो उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी हो। इसके लिए प्रत्येक योगाभ्यास के प्रभाव को समझना होगा।

हम लोग कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, मंत्रयोग और हठयोग जैसे अनेक योगांगों की चर्चा करते हैं। अधिकतम लाभ के लिए इनका संयोजन करना चाहिए। सिर्फ एक प्रकार का योग अधिक लाभप्रद नहीं होगा। यदि हम लोग सिर्फ हठयोग पर जोर दें और अन्य योगाभ्यासों की उपेक्षा करें तो व्यक्तित्व का एकांगी विकास होगा, समन्वित नहीं। आप सिर्फ शरीर, बुद्धि, भावना या आत्मा नहीं हैं, आपका व्यक्तित्व इन सभी तत्त्वों के समन्वित रूप से निर्मित है।

मानव व्यक्तित्व बुद्धि, भावना, कर्म और आत्मा का समन्वित रूप है। अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए आपको कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग समन्वित रूप से करना होगा। कुछ लोग सिर्फ ज्ञान योग की बातें करते हैं, क्योंकि यह आरामदायक है। आपको बस चिन्तन-मनन करना है और कुछ नहीं करना। आपको सबेरे जगना नहीं है, आपको प्राणायाम नहीं करना है, आपको अपने शरीर, मन आदि के संबंध में अनुशासन का कोई बंधन नहीं स्वीकारना है। परिणाम क्या होगा? आपका सिर्फ बौद्धिक विकास होगा, जो एकपक्षीय विकास है। व्यक्तित्व के चारों पक्षों का साथ-साथ विकास होना चाहिए। जीवन में समन्वित व्यक्तित्व का ही महत्त्व है। समन्वित व्यक्तित्व में मानसिक और भावनात्मक व्याधियाँ कम होती हैं, घबराहट और अधीरता विरल होती है।

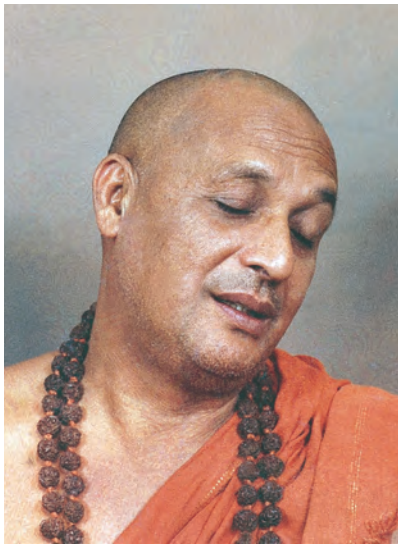

अभी दुनिया में क्या हो रहा है? चाहे पूरब हो या पश्चिम, लोगों ने व्यक्तित्व के एक पक्ष को ही सजाने-संवारने पर अधिक जोर दिया है। फलस्वरूप व्यक्तित्व के अन्य पक्ष उपेक्षित होते गए हैं। हम सिर्फ प्रोटीन ही लेते जायें और कार्बोहाईड्रेट बिल्कुल नहीं लें तो क्या होगा? शरीर का एकांगी विकास होगा। ऐसा भी हो सकता है कि आप सिर्फ कार्बोहाईड्रेट ही लें, प्रोटीन बिल्कुल न लें, तब भी शरीर का एकांगी विकास होगा।

जैसे शरीर के सर्वांगीण विकास के लिए विटामिन और अन्य पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आपके व्यक्तित्व को भी अनेक पोषक तत्त्वों की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति समन्वित योगाभ्यास से सम्भव है।

अभ्यास में सही अनुपात

जब मैं योग की बात करता हूँ तो मेरा तात्पर्य समन्वित योग से ही होता है। मैं योग के किसी एक पहलू पर अधिक जोर नहीं देता हूँ क्योंकि मेरी दृष्टि में यह ठीक नहीं है। एक बात निश्चित है, दो किलो सब्जी तैयार करने के लिए उसमें दो किलो नमक या दो किलो मक्खन नहीं डालते। इसमें एक सही अनुपात होता है। उसी प्रकार योग में भी एक उचित अनुपात होता है और मैंने अपने निजी अनुभव के आधार पर अपनी पुस्तकों में यह अनुपात दिया है।

अनुपात इस प्रकार होना चाहिए–70% कर्म योग; 20% राज योग, हठ योग कुण्डलिनी योग आदि, 5% ज्ञान योग और 5% भक्ति योग । यदि आप 70% ध्यानयोग, कुण्डलिनी योग और क्रिया योग करने की चेष्टा करेंगे तो पागलखाने जाने की नौबत आ सकती है। अथवा 70% ज्ञान योग करेंगे तो महाज्ञानी हो जायेंगे, किन्तु व्यक्तित्व के अन्य क्षेत्रों में महाबौने रह जायेंगे। भक्ति में भी अति का होना ठीक नहीं। आप हर बात में भगवान को ला खड़ा करेंगे। उससे असंतुलन पैदा होता है। ज्ञानयोग और राजयोग का आधिक्य भी व्यक्तित्व को असंतुलित बनाता है। आपकी सजगता भौतिक शरीर से सबसे ज्यादा जुड़ी है, इसलिए आपके अभ्यासों में कर्म योग की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

–योग प्रदीप-5 से उद्धृत

सत्यम् वाणी

जीवन की कठिनाइयों को हर मनुष्य अपने दृष्टिकोण से देखता है और हर एक की दृष्टि उसकी उम्र पर निर्भर करती है। एक सच्ची घटना बताता हूँ। अमेरिका में एक व्यापारी था जिसकी कपड़े की फैक्ट्री थी। आग लग गई, फैक्ट्री स्वाहा हो गई। उसने किसी तरह बची-खुची चीजें नीलाम करके बैंक को अपना कर्जा चुकाया और कहीं देहात में जाकर खेती-बाड़ी देखने लग गया। उसकी हमसे बात भी हुई उस समय। बोला, मिल के चले जाने से मुझे कोई शोक नहीं है, क्योंकि उसमें मेरा वश नहीं है। वह वहाँ पाँच-छः महीने रहा, रोज अखबार वगैरह पढ़ता था। एक दिन उसने अखबार में पढ़ा कि सरकार एरीज़ोना राज्य में पाँच हजार वर्ग मील का क्षेत्र खोल रही है, यूरेनियम जैसी परमाणु सामग्री के अनुसंधान के लिए, और उसने ठेकेदारों और कम्पनियों से पता लगाने के लिए कहा है। जैसे लोग तेल खोजते हैं न, वैसे ही। एक कम्पनी ने कहा कि जो इसे खोजना चाहेगा उसे गाड़ी मिलेगी, सेन्सर-मीटर मिलेंगे, और गाड़ी का पेट्रोल वगैरह खर्चा मिलेगा। जब वह यूरेनियम का पता लगा लेगा तो उसे इस-इस हिसाब से पैसा मिलेगा।

इस व्यक्ति ने कहा, चलो कोशिश करें, अपना भाग्य आजमाएँ। उसने कम्पनी से जीप और सेन्सर ले लिये। वह क्षेत्र बहुत बड़ा था, उसमें एक जगह से दूसरी जगह रोज जीप से आने-जाने लगा। चार-पाँच महीने हो गए, मीटर से कुछ पता नहीं चला। उसने सोचा कि हम एक महीना और करेंगे, फिर छोड़ देंगे। एक दिन उसने कहीं जाकर जीप रोकी, पानी पिया, सैण्डविच खाया, बैठ गया। एक-दो बजे का समय रहा होगा। उठा तो देखा उसका मीटर हिल रहा है। उसने पूरे इलाके की छानबीन की, नक्शा बनाया। एक-दो महीने लगे, फिर कम्पनी को पूरे कागज तैयार करके दिए। कम्पनी ने अपने तकनीकी लोग भेजे, उसकी खोज की पुष्टि की। उसे लाखों डॉलर का कमीशन मिला, जो उसके कपड़े की फैक्ट्री के दाम से कई गुना ज्यादा था।

मनुष्य को जीवन में, व्यापार में या परिवार में झटके तो जरूर लगते हैं। यह सम्भव नहीं है कि जीवन में किसी आदमी को मुश्किल हो ही नहीं। मुश्किल चाहता कोई नहीं, सब लोग चाहते हैं कि बस उन्नति हो, लेकिन यह जीवन का नियम नहीं है। न ही यह शरीर, समाज, राष्ट्र या व्यापार का नियम है। वहाँ पर जो मुश्किलें आती हैं वे आदमी के मन को प्रभावित करती हैं, और फिर शरीर को भी प्रभावित करती हैं। दिल पर असर पड़ता है। दिल बहुत मजबूत हुआ तो फेफड़ों को प्रभावित करती हैं, फेफड़े मजबूत हुए तो गुर्दे को, सब कुछ मजबूत हुआ तो पेट को, कहीं-न-कहीं अपना प्रभाव छोड़ती हैं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे असर ज्यादा होते जाता है।

अब ऐसी हालत में दो-तीन चीजें करनी पड़ती हैं। सबसे पहले चीज तो यह है कि आपको स्थिति को कुबूल करना होगा। वह स्थिति चाहे पारिवारिक हो या पढ़ाई-लिखाई में हो या नौकरी में हो, पहले तो उसे मान लेना चाहिए। दूसरी चीज, उस वक्त आदमी को अपने रहने के स्तर को घटाना चाहिए, अपनी जीवनशैली को सरल बनाना चाहिए। यह मैंने यूरोप में देखा है। मैंने अरबपतियों को किराए के मकान में रहते हुए देखा है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ जो पहले अपने निजी हवाई जहाज पर एक देश से दूसरे देश व्यापार करने के लिए जाया करते थे। बाद में देखा, सब बेचकर छोटे-से किराए के मकान में रहते हैं। बच्चों को सरकारी स्कूल में डाल दिया है। मतलब जीवन-स्तर को इतना गिरा देते हैं, इतना हल्का कर देते हैं। जिस परिस्थिति में वे होते हैं उसके अनुकूल जीते हैं। हम भारतीय लोगों की समस्या है कि गड़बड़ होने पर भी हमारा जीवन-स्तर वैसा ही रहता है। उससे होता यह है कि सबसे पहले तनाव बढ़ता है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में अपने जीवन

को सरल बनाओ। रसोई को सरल बनाने से शुरू करके, एक-एक करके अपने नौकर-चाकर, गाड़ियाँ वगैरह, सब कम करते जाओ।

ऐसा नहीं कि मनुष्य के जीवन में उतार ही उतार होता रहे, झटका ही लगता रहे। वह तो आदमी को शिक्षा देने आता है, कहाँ पर गलती की है, यह बतलाने आता है। तुमने निर्णय लेने में कहाँ पर गलती की थी, तुमने अपनी व्यवस्था को कहाँ पर कमजोर रखा था, उसको बतलाने के लिए यह झटका लगता है। झटका जीवन की सीख है। ऐसा समझकर आदमी को पहले अपना जीवन सरल और सादा करना चाहिए। भूल जाओ कि तुम उद्योगपति या करोड़पति हो। सोचो कि तुम एक साधारण मध्यम वर्ग परिवार के हो। इससे क्या होगा? घर में मुश्किलों से पैदा होने वाले जो असन्तोष हैं, जो शिकवा-शिकायतें वगैरह हैं, बन्द हो जायेंगे।

मान लो कि तुम बहुत बड़े व्यापारी हो और अचानक कारोबार चौपट हो गया। एक लड़का शिमला में पढ़ रहा है, दूसरा लड़का अमेरिका में पढ़ रहा है, लड़की कुनूर मे पढ़ रही है, उनके पास पाँच-पाँच गाड़ियाँ हैं। और यहाँ कुछ है नहीं। घी, तेल, नमक सब खत्म। उस वक्त सब तरह के झगड़े होने लगते हैं, आपस में खींचातानी होने लगती है। उस समय अगर कुछ घटा दिया जाए, कुछ चीजें कम कर दी जाएँ तो शान्ति हो जाती है। शान्ति सबसे महत्वपूर्ण चीज है। मन को ठीक करने के लिए पहले अपने वातावरण और परिस्थितियों को सामान्य बनाना पड़ता है।

तीसरी चीज यह कि ऐसे वक्त में घर के लोगों को एक-दूसरे पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। ऐसा न हो कि तुम अपने बेटे पर दोषारोपण करो, बेटा बाप पर दोषारोपण करे, भाई पर दोषारोपण करे, पत्नी पर करे, नौकर पर करे। मुश्किलों के लिए किसी को जिम्मेवार ठहराने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपने आपको एकदम दबाना पड़ता है। उस वक्त यह दर्शन काम करेगा कि न तो इनकी गलती थी, न उनकी, सब तकदीर में लिखा हुआ था, सब भगवान की इच्छा थी। यहाँ पर यह दृष्टिकोण लाना चाहिए, और वह सब बराबर कर देता है। यह सच्चाई तो नहीं है, मगर प्रभावी दर्शन है।

जीवन में मुसीबतों और झटकों से बचने के लिए क्या करें?

वही तो बोल रहा हूँ, जैसे ही जीवन में झटका लगे तुरंत अपना जीवन-स्तर गिरा दो।

यह तो होने के बाद, लेकिन होने के पहले के लिए कोई एहतियात?

अपनी व्यवस्था को जाँचो कि कहाँ पर गलती है। तुम्हारी बेचने की प्रणाली सही है क्या? तुम्हारी प्रबन्धन प्रणाली सही है क्या? तुम अपने मजदूरों को कम तन्ख्वाह या कम बोनस तो नहीं देते? बाजार में आज बहुत ज्यादा प्रतिस्पर्धा तो नहीं हो गई?

कई बार व्यवसाय चलाने में शासकीय बाधाएँ भी आती हैं?

देखो भाई, शासकीय बाधाएँ हर युग में आती हैं, और हर युग में शासकीय बाधाओं से निपटने के लिए उपाय निकाले गए हैं। शास्त्र कहता है कि राजा के भय को दूर रखने का एक ही तरीका है, 'वित्तं' माने ठन ठन। ऐसा नहीं कि शासकीय बाधाएँ एक ही व्यक्ति को आती हों, वे सब को आती हैं। व्यापारी और उपभोक्ता के बीच सबसे बड़ा रोड़ा शासन ही है। यह आज के युग में नहीं, हर युग में और हर देश में होते आया है। राजा अपना अंश जरूर माँगेगा। राजा माने मंत्री हो, सरकारी पदाधिकारी हो, आयकर वाला हो, वह अपना हिस्सा लेता ही है। इसको तुम रोक नहीं सकते। चाहे तुम अखबार में छापो, चाहे उन पर मुकदमा करो, यह रुकने वाला नहीं है। यह जो आजकल लोग एक-दूसरे पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हैं, यह केवल राजनैतिक चाल है एक-दूसरे को गिराने के लिए। एक चोर दूसरे को चोर कहता है, क्यों? जब तक हम तुम्हें गाली नहीं देंगे तब तक तुम अलोकप्रिय कैसे होगे? और जब तक तुम अलोकप्रिय नहीं होगे तब तक मुझे वोट कैसे मिलेंगे। इतनी सी बात है, बाकी चीजें गिनो ही मत। मानकर चलो कि सभी भ्रष्ट हैं।

इसलिए हमेशा शासक को प्रसन्न रखना चाहिये। शासक को प्रसन्न रखने से खोया माल भी मिल जाता है, क्योंकि उसके पास शक्ति बहुत रहती है। शासक को अप्रासंगिक नहीं बनाना, नहीं तो फिर चोर-डाकू तुम्हें तंग करेंगे। बेहतर है कि शासन को खुश रखो बजाय इसके कि किसी दादा या गुण्डा को हफ्ता देने के चंगुल में फंसो। इस बात को हमेशा याद रखना।

मेरा क्या लक्ष्य होना चाहिए? जीवन में मैं कुछ कर पाऊँगी या नहीं?

देखो जी, यह प्रश्न तुम्हें अपने से पूछना होगा। अगर मनुष्य चाहे तो केवल अपने से सब कुछ कर सकता है, पर जब तक उसके हाथ-पैर में बेड़ी है तब तक सोचने से कोई फायदा नहीं। मनुष्य ने खुद ही अपने लिए कुछ ऐसे बन्धन बना लिए हैं जो उसे लक्ष्य की ओर बढ़ने से रोकते हैं।

उदाहरण के लिए?

बाल-बच्चों को देखना है, सास-ससुर या माता-पिता की सेवा करनी है, पत्नी या पति का धर्म निभाना है, ये सब अपनी बनाई हुई मान्यताएँ हैं जिनमें सच्चाई कुछ भी नहीं है। हाँ, सच्चाई उनके लिए है जो उसे ठीक समझते हों। मगर तुम चाहती हो कि तुम्हें कुछ करना है। कर तो सब रहे हैं, कोई बेटा बनकर कर रहा है, तो कोई बहू बनकर तो कोई भतीजा बनकर तो कोई भाई बनकर, मगर तुम जीवन में या अध्यात्म में वाकई कुछ करना चाहते हो तब उसके लिए कुछ मान्यताओं को छोड़ना पड़ता है। अपनी जवाबदेही कम करनी पड़ती है। मैं जीवन में कुछ करना

चाहता हूँ, मुझे अपने माता-पिता को उस किनारे करना होगा। जो भूख से आतुर होते हैं, उनके लिए खट्टे-मीठे का कोई प्रयोजन नहीं होता। जो मिल गया, खा लिया। *कामातुराणां न भयं न लज्जा*—जो काम से आतुर है वह भय और लज्जा इधर-उधर फेंक देता है। *विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा*—विद्या के लिए आतुर सुख को इधर फेंकता है, निद्रा को उधर। उसी तरह से जीवन में आध्यात्मिक अथवा लौकिक उन्नति के लिए व्यक्ति को बहुत-सी मान्यताओं को इधर-उधर फेंकना ही पड़ेगा। तुम चाहो कि हँसो और गाल भी फुलाओ, यह नहीं हो सकता।

गुरुजी, संघर्ष और परीक्षा कितनी लेंगे, बहुत थक गई हूँ।

यह केवल मानसिक विचार है, इसमें वास्तविक कुछ नहीं है। हमें एक चीज समझ में नहीं आती कि आदमी वर्तमान से संतुष्ट क्यों नहीं है। मेरे पास जो कुछ है वही बहुत है, ऐसा क्यों नहीं समझते हो? अगर सुख मनुष्य जीवन की एक अनुभूति है तो दु:ख भी जीवन की एक अनुभूति है। सम्पत्ति जीवन की एक अवस्था है और विपत्ति भी। तुम हमेशा सुख और सम्पत्ति ही क्यों चाहते हो? किसी संत ने कहा है—

सुख के माथे सिल परे, नाम हृदय से जाये।
बलिहारी वा दु:ख की, पल-पल नाम रटाये॥

अब यह विचार ही दूसरा है। संत कहता है कि मुझे दु:ख दो ताकि मैं भगवान का नाम ले सकूँ, भगवान को याद कर सकूँ, जीवन की गहराइयों मे जा सकूँ। एक बात को याद रखो, जो आदमी सुखी रहता है वह जीवन की परिधि पर ही रहता है। पर जो आदमी बार-बार दु:खी होता है वह जीवन की गहराई में उतरता है। जो आदमी स्वस्थ रहता है वह ऊपर-ऊपर रहता है, पर जो बीमार रहता है वह शरीर की गहराई में जाता है।

मनुष्य के जीवन में सुख-दु:ख दिन और रात की तरह निश्चित रूप से आते हैं, आते रहेंगे, कोई इसे रोक नहीं सकता। इसलिए अपने को ऐसा प्रशिक्षण देना चाहिए कि दोनों अवस्थाओं में अपने को ठीक से रख सकें। हम लोगों को अपने

माता-पिता या बड़े-बूढों से क्या प्रशिक्षण मिला है? सुख को भोगना और दु:ख में रोना। यही तो प्रशिक्षण हमें मिला है। हमें यह नहीं कहा गया कि सुख को तो भोगो संयम के साथ, और दु:ख में अपने को समझना सीखो। दु:ख अपने को समझाने के लिए आता है। दु:ख मनुष्य की गलती सुधारने का समय है। जब तुम स्कूल में गलती करते हो तो मास्टर साहब कॉपी में लाल निशान मार देते हैं और तुम्हें अपनी गलती समझनी पड़ती है। वैसे ही दु:ख और विपत्ति आत्म-परीक्षण का समय है।

इस बात को तुम याद रख लो कि बिना सुख-दु:ख का जीवन किसी का नहीं है। जिसकी आमदनी तीस रुपये रोज है उसे भी सुख-दु:ख लगता है और करोड़पति को भी। सुख और दु:ख मनुष्य की अपनी विचारधारा से, अपने सोचने के ढंग से सम्बन्धित है। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम थे, उनके जीवन में सुख कब आया और दु:ख कब, बतलाओ। वे पैदा हुए, सब को सुख मिला। सात साल के हुए तो गुरुकुल चले गये। वहाँ जमीन पर सोना, गुरुजी के गाय-बैल को धोना, गुरु माँ की सेवा करना, खेती-बाड़ी करना, बारह साल तो यही किया। घर लौटे तो फिर अयोध्या से पैदल चले गए विश्वामित्र जी के साथ। कहाँ? जनकपुरी। रास्ते में कभी ताड़का से झगड़ा तो कभी मारीच और सुबाहु से टक्कर हो गई। सीताजी को ब्याह कर लाए, सोचा कि बड़े सुख-चैन से रहेंगे, युवराज बनेंगे। लेकिन वनवास हो गया, वह भी दो-चार साल का नहीं, चौदह साल का। वह भी उस वक्त का। तुम आज मोटर साइकिल और टेंट वगैरह लेकर वनवास करोगे तो भी भारी पड़ेगा। उस वक्त तो उनके पास कुछ नहीं था।

सबसे बड़ी त्रासदी तब हुई जब सीताजी का अपहरण हुआ। उस युग की मान्यता ऐसी थी कि जिस पुरुष की स्त्री का अपहरण हो जाए, उस पुरुष को अपनी नाक कटवा लेनी चाहिए। रावण ने सीताजी का जो अपहरण किया, उससे रामजी की नाक कटी न। बड़ी बेईज़्ज़ती का सवाल है। उनकी सारी इज़्ज़त, सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। रघुवंश का राजपुत्र और उसकी स्त्री को कोई उठाकर ले गया? कैसा क्षत्रिय है, अपनी औरत को भी नहीं सम्भाल सकता। यह त्रासदी हुई। उसके बाद भयंकर दुष्ट आदमी से जबरदस्त लड़ाई हुई। जीतकर वापस आए तो कुछ दिन सुख से बीते। फिर सीताजी के ऊपर आरोप हुआ। अब वे सीताजी को इतना प्रेम करते थे कि उनके बिना रह नहीं सकते थे। उनका प्रेम बहुत गहरा था, मगर युग की व्यवस्था के अनुसार, समाज की मर्यादा और लोकरीति के अनुसार अलग हो गए। यह एक महापुरुष के जीवन की त्रासदी का उदाहरण प्रस्तुत किया।

दूसरा उदाहरण कृष्णजी का। पैदा होने से पहले ही उनका नाम कंस की हिट-लिस्ट में आ गया था। उसके आगे की कहानी तो तुम्हें मालूम है। और आखिर में क्या हुआ? श्रीकृष्ण का वध हुआ। उनके जीवन में बहुत दुश्मन रहे। जरासंध, शिशुपाल, रुक्मि, हस्तिनापुर वाले सभी उनके दुश्मन थे। अंत में मारे गए और

उनके मरने के पहले यदुवंश भी नष्ट हो गया। इससे बढ़कर त्रासदी क्या हो सकती है कि बाप के सब बेटे मर जाएँ और बाप जिन्दा रहे।

मैं दु:ख और सुख को समझाने के लिए ये उदाहरण दे रहा हूँ। यह बात सबको समझनी है कि दु:ख और सुख सबके जीवन में दिन और रात की तरह आते हैं। सवाल केवल यह उठता है कि आपको प्रशिक्षण कैसा मिला है या आपने अपने लिए किस प्रकार का जीवन-दर्शन बनाकर रखा है। आप दु:ख से घबराते हैं या दु:ख से जूझते हैं? सुख के साथ आपका रिश्ता किस तरह से चलता है? मनुष्य अगर चाहे कि दु:ख उसपर भारी न पड़े तो उसे तय करना होगा कि सुख के साथ उसका सम्बन्ध कितना रहेगा। हाथ में पैसा है, चाहो तो हवाई जहाज से उड़ सकते हो, महलों में रह सकते हो, कुछ भी कर सकते हो। तुम्हें समझना होगा कि मैं क्या करूँगा, क्या नहीं करूँगा। पैसे के बल पर प्राप्त किया हुआ सुख बाद में दु:ख का कारण होता है। सुख वास्तव में सम्पत्ति में नहीं है। जो सोचते हैं कि पैसा है तो वही सब कुछ है, गलत सोचते हैं।

दुनिया का सबसे अच्छा कल्याणकारी राष्ट्र है स्वीडन। अभी इस समय स्वीडन की सबसे अच्छी सरकार, सबसे बढ़िया सामाजिक व्यवस्था मानी जाती है। लेकिन वहाँ दुनिया में सबसे अधिक आत्महत्याएँ होती हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि सुख इतनी अच्छी चीज नहीं है, कि हम उसी के लिए लालायित रहें, और दु:ख उतनी बुरी चीज नहीं है कि हम हमेशा घबराएँ।

जिनके पास पैसा है, सम्पत्ति है, साधन हैं उन्हें अपने धन का एक हिस्सा गरीबों के लिए निकाल लेना चाहिए और किसी अच्छी संस्था के माध्यम से देना चाहिए। रामकृष्ण मिशन अच्छी संस्था है, ऐसे और भी बहुत-से आश्रम हैं। दूसरी चीज, खुद एक गरीब आदमी की तरह रहना चाहिए। धर्मशाला में रहना चाहिए, तीर्थों में जाना चाहिए। हमारे यहाँ तीर्थ इसलिए तो बने हैं। पहले तो तीर्थ बहुत मुश्किल थे न? बोलते थे, बद्री गया तो वहीं रह गया, ऐसे कठिन तीर्थ थे।

अपना पैसे का एक हिस्सा धार्मिक कार्यों के लिए, एक हिस्सा परोपकार के कार्यों के लिए, एक हिस्सा राष्ट्र के कार्यों के लिए, एक हिस्सा अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए, एक हिस्सा अपने बाल-बच्चों के लिए रखना चाहिए। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जो हमें पाश्चात्य देशों से सीखनी होंगी। उनके यहाँ होता है यह सब। वहाँ बूढ़े लोग जब मरते हैं तो पैसा बच्चों को नहीं दे जाते हैं। नहीं, वकील से अपना वसीयतनामा बनवाकर जाते हैं जिसमें किसी धार्मिक संस्था, अनाथालय, अस्पताल, विकलांग केन्द्र या पुस्तकालय को अपनी धन-सम्पत्ति दे जाते हैं। यही कारण है कि उनके बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो पाते हैं। उन्हें मालूम है कि बाप से तो कुछ मिलने वाला है नहीं। चौदह साल के होते-होते वहाँ के लड़के-लड़कियों को बोल दिया जाता है, तुम्हारे पैर मजबूत हो गए हैं, अब

तुम जाओ। कहीं अपना घर लेकर रहते हैं, सबेरे कहीं मुर्गीखाना या सड़क साफ करते हैं, किसी तरह पैसा कमाते हैं, आगे की पढ़ाई करते हैं। अपने घर नहीं आते, कभी हफ्ते में माँ-बाप से मिल लेते हैं।

अपने पैर पर खड़े रहने वाली सभ्यता सुख-दु:ख को सहन कर सकती है। मगर मुफ्त का माल तोड़ने वाले बच्चों को पैसे के चले जाने के बाद दिल का दौरा हो जाता है। उन्हें लगता है, बाप रे! अब तो फैशन वाले कपड़े नहीं पहन सकेंगे, क्रीम-पाउडर नहीं आ सकेगा, वीडियो कैसेट कैसे देखेंगे। सब फालतू चीज है। हमारे देश में आज सम्पत्ति बहुत तेजी से आ रही है, जबकि हम लोग अब तक बहुत गरीब रहे हैं। सम्पत्ति की चकाचौंध में हम यह भूल रहे हैं कि सुख और दु:ख मनुष्य के मन की अवस्था का नाम है। पैसे से इसका कोई मतलब नहीं है। क्या करोड़पति दु:खी नहीं होता? दु:ख और सुख मात्र एक व्यक्तिगत अनुभव है, सोच है, उसमें वास्तविक कुछ भी नहीं।

हमें हमेशा से ऐसा लगता रहा है कि सारी दुनिया केवल अपने लिए सोचती है। यहाँ तक कि साधु-महात्मा भी अपने ही मोक्ष के बारे में साचते हैं, लेकिन दूसरों के दु:ख-सुख का कोई ख्याल ही नहीं रखता। दुनिया में कितने लोग लंगड़े हैं, कोढ़ी हैं। कोई उनके बारे में नहीं सोचता, सब अपने बारे में ही सोचते हैं। अभी हाल में इंग्लैण्ड की राजकुमारी डायना की मृत्यु हुई। सारे संसार में तहलका मच गया। केवल इसलिए नहीं कि वह राजकुमारी थी, उसके अलावा वह एक कोमल हृदय, करुणा से परिपूर्ण व्यक्ति भी थी। आप लोग तो यही देखते थे कि वह किस मर्द के साथ घूमती है, मगर यह नहीं देखते थे कि दुनिया में कहाँ-कहाँ कितनी संस्थाओं की उसने कितनी मदद की है। उसने अपने जूते, कपड़े, जेवर, सब चीज़ें नीलाम करवा दीं और उससे जो लाखों डॉलर मिले, उससे अफ्रीका से लेकर फिलिपीन्स तक, सब जगह सैकड़ों संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया।

इस कलियुग में मनुष्य का सबसे बड़ा गुण परोपकार है। उसका व्यक्तिगत आचरण कैसा है, यह कोई अर्थ नहीं रखता, मगर तुम कितनों का भला करते हो, यह महत्त्वपूर्ण होता है। तुम कितने ही अच्छे आदमी क्यों न हो, पर उसका क्या फायदा अगर तुम किसी के काम नहीं आए तो। जो मनुष्य इस युग में

दूसरे के काम नहीं आएगा वह आचरणहीन है, आज के युग का यही संदेश है। महात्मा गाँधी का यही संदेश था न? तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में क्या लिखा है? कलियुग में केवल दो चीजें काम आएँगी, नाम का जप और दूसरों का भला, *परहित सरिस धर्म नहीं भाई।* इन दो के अलावा और कोई चीज तुम्हारे काम नहीं आएगी।

तुम शाकाहारी हो या मांसाहारी हो, पतलून पहनते हो या धोती पहनते हो, हमें उससे कोई मतलब नहीं। हमें यह बतलाओ कि तुम दूसरे के लिए क्या कर रहे हो, तुमने कितने लोगों के आँसू पोंछे हैं, कितने लोगों को तुमने अपनी रोजी-रोटी कमाने लायक बनाया है। लंगड़े को तुम पैर तो नहीं दे सकते, पर ट्राइसाईकिल तो दे ही सकते हो न, ताकि ट्राइसाईकिल में जाकर कोई चपरासी वगैरह का काम कर सके, एक-दो हजार रुपये कमाकर अपने बीवी-बच्चों को खिला सके। ऐसा विचार मन में क्यों नहीं आता है? मैं तो कहता हूँ कि कोई व्यभिचारी हो, दुराचारी हो, चोर हो, जुआरी हो, पर अगर दूसरे के काम आता हो तो वह आज का संत है। तुम्हारी जिन्दगी किसी काम की नहीं अगर दूसरे के काम न आए। तुम्हारी व्यक्तिगत जिन्दगी से हमें क्या मतलब है? हमें भूख लगी है और तुम वहाँ हलवा-पूड़ी खा रहे हो, अरे भाई! थोड़ा हमें भी दे दो न? माँ जब खाती है तो उसे ख्याल आता है कि पता नहीं छात्रावास में मेरे बेटे ने क्या खाया होगा। तब वह दूसरे के बारे में ऐसा क्यों नहीं सोच सकती? सबसे बड़ा गुण है दूसरों के बारे में भी सोचना, और सबसे बड़ा अवगुण है केवल अपने ही बारे में सोचना।

स्वामीजी, आजकल के जो बच्चे हैं, वे गाँधीजी और गोडसे में से गोडसे को ज्यादा पसंद करते हैं।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। आप लोगों से कुछ कह देते होंगे, लेकिन गोडसे ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसकी कोई पूजा करे। जबकि गाँधीजी ने हिन्दुस्तान और दुनिया को जो दिया है, वह आज तक किसी ने नहीं दिया है। उन्होंने एक जीवन-दर्शन दिया, जिसकी मिसाल उनकी अपनी जिन्दगी थी। उनकी वजह से हरिजनों के प्रति लोगों का ध्यान गया। हरिजन उद्धार, अछूत उद्धार, ग्राम उद्धार, विधवा विवाह, बुनियादी शिक्षा—कितनी चीजें उन्होंने दी। गोडसे तो एक सामाजिक प्रतिक्रिया थी। गलतियाँ तो महात्मा गाँधी से भी हुई होंगी, मगर उन गलतियों का परीक्षण करने का अधिकार हमें नहीं है। हमें केवल एक चीज से मतलब रखना चाहिए कि क्या उन्होंने मनुष्य जाति को मनुष्य जाति के प्रति जागृत किया या नहीं? हाँ, बिल्कुल किया। गाँधीजी यही कहा करते थे कि दूसरों के बारे में भी सोचो। हमारी गीता और रामायण में यही चीज लिखी है। हमारे प्रत्येक धर्मशास्त्र में एक ही बात पर जोर दिया हुआ है कि मनुष्य को दूसरे के काम आना चाहिए। गाय दूसरे के काम आती है, घोड़ा दूसरे के काम आता है, पेड़ दूसरे के काम आते हैं, मगर इन्सान केवल अपने ही

काम आता है और मजे की बात यह कि उसके मरने के बाद उसकी एक भी चीज किसी के काम आने वाली नहीं। गाय मरेगी तो कम-से-कम उसकी चमड़ी से जूता तो बनेगा। मनुष्य मरे तो उल्टी लकड़ी भी नष्ट होती है उसको जलाने के लिए।

इसलिए हमें सबसे पहले यह चीज उजागर करनी होगी कि हर मनुष्य का दूसरों के प्रति भी कुछ दायित्व है। कलियुग में मनुष्य परोपकारी को पहचानेगा, ब्रह्मचारी को नहीं। इस युग में मनुष्य गाँधीजी जैसे आदमी को पहचानेगा जो दूसरे के लिए जीवन बलिदान करता है। यह नहीं पूछेगा कि तुम मांस खाते हो या नहीं, चुटिया रखते हो या नहीं, जनेऊ पहनते हो या नहीं, शैव हो या शाक्त हो, हिन्दू हो या मुसलमान हो, तुम्हारी एक पत्नी है या दो, कोई नहीं पूछेगा, केवल मनुष्य को मनुष्य के काम आना चाहिए। कोई गरीब बच्चा प्रतिभाशाली हो तो उसके लिए छात्रवृत्ति देना, ग्वाले को गाय देना, कुम्हार को चाक देना, परोपकार के ऐसे कितने छोटे-मोटे काम किए जा सकते हैं।

भारत बहुत गरीब और पिछड़ा देश है। दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई या चेन्नई भारत नहीं है। भारत वह है जहाँ मैं रहता हूँ। भारत का सत्तर प्रतिशत ठीक वैसा ही है जहाँ मैं रहता हूँ। सब जानते हैं कि भारत कृषिप्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनता कृषि पर अवलम्बित है, न कि तकनीकी पर। गाँव में रहने वाले किसान और मजदूर बड़े स्वावलम्बी हैं। अगर उन्हें थोड़ी-सी भी मदद हो जाए तो कहाँ से कहाँ पहुँच जाएँगे। उनके पास जीवित रहने की अद्‌भुत क्षमता है। भगवान से इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें सम्पत्ति नहीं, समृद्धि दो। सम्पत्ति और समृद्धि में बहुत अन्तर है। किसान की समृद्धि क्या है? पानी, बीज, खाद, बैल, खेती। मजदूर की समृद्धि क्या है? रोज उसे चालीस-पचास की मजदूरी मिल जाए।

स्त्री-सम्मान

तंत्र-शास्त्र में शक्ति साधना के अनेकों रूप हैं। उसमें देवी की पूजा अपनी जगह पर है, लेकिन स्त्री जाति के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता की भावना हमारे मन में हमेशा रही, और इसलिए हमने यहाँ की नववधुओं को शादी के तोहफे देने का निश्चय किया है। जब से मैं यहाँ आया हूँ हमने हर साल करीब पाँच सौ ऐसे सेट बाँटे हैं। इस साल और भी होंगे। अगर हर एक सेट को देखोगे तो दंग रह जाओगे। तुमने अपनी बेटी को भी शायद इतना कुछ नहीं दिया होगा। कम-से-कम चालीस-पचास हज़ार का सामान होता है, कभी-कभी तो एक-डेढ़ लाख तक का भी होता है।

हमने कभी भी स्त्रियों के साथ अपने सम्बन्ध को छिपाया नहीं है। आखिर जो हमारी माँ रही है, या बहन रही है, या बेटी रही है, उसके साथ हमारा सम्बन्ध जन्म से मृत्यु तक, पालने से लेकर अर्थी तक रहना चाहिए। स्त्री जाति के प्रति हिन्दुस्तान के लोगों को अपनी सोच बदलनी चाहिये। स्त्री की शिक्षा पुरुष से

अधिक आवश्यक है। अगर हमारे समाज में किसी को रक्षा की आवश्यकता है, तो पुरुष को है। पुरुष बिगड़ा हुआ है, स्त्रियाँ बिगड़ी नहीं हैं।

स्त्रियों की शिक्षा उच्च कोटि की होनी चाहिये। उसे नौकरी-रोज़गार में जाना चाहिये, चाहे वह करोड़पति की लड़की हो या मजदूर की। पैसा कमाने के लिए नहीं, बल्कि समाज से सम्पर्क बनाने के लिए, समाज की जानकारी प्राप्त करने के लिए, समाज को अपना एक योगदान देने के लिए। स्त्री में जो ममता, वात्सल्य, सहनशीलता और विवेक-बुद्धि है, उसका लाभ केवल परिवार को ही नहीं, समाज को मिलना चाहिए। समाज को केवल पुरुष का अक्खड़पन मिला है, इसलिए जहाँ-जहाँ पुरुष प्रधान समाज है वहाँ सब गड़बड़ी है, और जहाँ स्त्रियाँ समाज में आगे आई हैं उन्होंने समाज को सुधारा है, संभाला है, क्योंकि स्त्री लक्ष्मी का ही रूप होती है। जिस दिन पैदा हुई उस दिन से तुम्हारे घर में सुन्दरता और कोमलता ले आई। जब तुम्हारे घर से दूसरे घर गई तो खाली हाथ नहीं गई, बैग पर बैग भर कर गई। कोई लड़की खाली हाथ ससुराल नहीं जाती, भिखारी की लड़की भी नहीं।

उस लड़की के प्रति तुमने क्या किया है? सारे नियम-कानून उस पर ही लाद दिए। आदमी विधुर बनता है तो वही कपड़ा पहनता है, पर औरत विधवा बनती है तो सफेद कपड़ा पहनती है, यह कौन-सा कानून है? आदमी विधुर होता है तो भी सब मंगलकारी कार्यों में भाग लेता है, लेकिन स्त्री विधवा बनती है तो किसी मंगलकार्य में भाग नहीं ले सकती। यह कैसा सामाजिक न्याय है? जो तुम्हारे घर खाली हाथ नहीं आई, जो अपनी खेत-क्यारी छोड़कर तुम्हारी खेत-क्यारी में आई है, उसके प्रति तुम्हारे मन में इतने दुराग्रह? उसके लिए तुमने इतने सारे नियम बनाए, वह भी ऋषि-मुनियों का नाम ले-लेकर! आखिर किस ऋषि-मुनि ने ऐसा

कहा है? ऋषि-मुनियों ने तो कहा है– *यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:*– जहाँ स्त्री का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं। उन्होंने कहीं पर भी यह नहीं कहा कि जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं वहाँ सब बन्टाधार हो जाता है। पते की बात यह कि हमारे ऋषि-मुनियों ने कभी भूलकर भी राम-सीता या कृष्ण-राधा कहा ही नहीं। हमेशा पहले स्त्री का नाम रखा। तुम्हारे नाम में भी, जैसे श्री गोयन्का, 'श्री' का नाम ही तो पहले आया। पहले लड़की आई, फिर तुम्हारा नाम, है कि नहीं?

हमारे यहाँ हमेशा से स्वयंवर हुए हैं, स्वयंवर का मतलब वर खुद चुनना। किन्तु हमारा समाज कई सदियों तक गुलाम रहा और विदेशी प्रभावों के कारण कई परिवर्तन आए। आज हम यह बात सबसे कहते हैं कि लड़की को अपना वर खुद चुनना चाहिए। अपना चुनाव करने के लिए लड़की में योग्यता भी होनी चाहिये। उसमें बुद्धि भी होनी चाहिए, विवेक भी होना चाहिए, दुनिया देखनी चाहिए। अगर दुनिया देखोगे नहीं तो चुनने में गलती हो जायेगी। इसलिए लड़की को लायक बनाना होगा। उसी से परिवार का कल्याण हो सकता है।

अब तकरीबन सारी दुनिया में लड़कियों के बारे में एक खुलापन आ गया है। सब जगह लोग यह चाहते हैं कि लड़कियाँ अच्छे-अच्छे काम सम्भालें। वे राजनीति में आएँ, उद्योग में आएँ, कारोबार में प्रबंधक बनें, शिक्षा में आएँ। जब भी किसी देश की कोई महिला प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बनती है तो काफी सम्मान होता है। अभी न्यूज़ीलैण्ड में प्रधानमंत्री महिला बनी है। श्रीलंका की प्रधानमंत्री स्त्री है, आयरलैण्ड की राष्ट्रपति स्त्री है, बांग्लादेश की प्रधानमंत्री स्त्री है। लोग इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि हमें औरतों को उनके जायज अधिकार देने चाहिए। औरतों को जायज अधिकार देने का मतलब होता है अपना मातृ-ऋण चुकाना। तुमने मातृ-ऋण चुकाया कहाँ, वह तब चुकेगा जब हमारे यहाँ महिलाओं का समाज पढ़ा-लिखा हो, विद्वान् हो। न्यायपालिका में जाओ, वहाँ लड़की दिखे; सेना में जाओ, वहाँ भी लड़की दिखे; संसद में जाओ, वहाँ लड़कियाँ बैठें– यह स्वप्न प्रत्येक भारतीय का होना चाहिये। उसके बिना देश की उन्नति के बारे में कुछ सोचना ही नहीं। जिस घर में स्त्री की उन्नति नहीं होती, उस घर में उन्नति खाली दिखावे की उन्नति है। मर्यादा की रक्षा स्त्री ही करती है, पुरुष नहीं।

– 11 नवम्बर 1997, रिखिया

मैंने गाँव-शहर में घूम-घूम कर यही देखा और समझा है कि महिलाओं को सिखाना ज्यादा जरूरी है। नारी की प्रगति धीरे-धीरे होती है, पर होती है और मजबूत होती है। स्त्री का मन सचमुच पारा है, सध गया तो एक आश्चर्य की सृष्टि की जा सकती है।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सत्यानंद योग

सामाजिक परिवर्तन का माध्यम–योग

स्वामी निरंजानन्द सरस्वती

हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी एक चिकित्सक थे। एक सिद्धहस्त चिकित्सक होने के नाते, एक वैज्ञानिक होने के नाते एवं सबसे अधिक एक मानवतावादी होने के नाते उन्होंने अनुभव किया था कि आज संसार में मनुष्य जिन रोगों और व्याधियों से पीड़ित है, उनका निदान किसी भौतिक चिकित्सा प्रणाली के पास नहीं है, बल्कि मानव की समस्त समस्याओं का निदान उसके ही अन्दर विद्यमान है। उनकी मान्यता थी कि यदि मानव अपना जीवन बिगाड़ सकता है तो उसके अन्दर यह क्षमता भी है कि वह अपने जीवन को सुधार सकता है, उसमें सुख और शान्ति ला सकता है।

भौतिकता का सम्मोहन

हर प्रकार की सम्पन्नता प्राप्त करने के बाद भी मानव अस्वस्थ है, अशान्त है। आज तक हम एक भी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिले हैं जो यह कहे कि मैं पूर्णरूपेण स्वस्थ हूँ। यदि कोई शरीर से स्वस्थ है तो मन से बीमार है, अगर मन से स्वस्थ है तो भावनात्मक स्तर पर दु:खी है, यदि भावनात्मक स्तर पर भी स्वस्थ है तो आध्यात्मिक स्तर पर अस्वस्थ है। तात्पर्य यह कि हमारे जीवन में कहीं-न-कहीं पीड़ा अवश्य रहती है। इसका कारण है भौतिकता के प्रति सम्मोहन। यह भौतिक सम्मोहन ऐसा विचित्र जादू है जो मनुष्य को अपने आप से दूर ही ले जाता है।

आप अपने जीवन में ही देखें, क्या आपके शरीर में, आपके मन और भावनाओं में संतुलन और सामंजस्य है? नहीं है। हमारे भीतर एक संस्कार है, और यह संस्कार

आदि मानव से चला आया है। सर्वप्रथम जो मानव धरती पर अवतरित हुआ, और उसने चारों तरफ देखा तो उसके भीतर स्वाभाविक जिज्ञासा जगी– 'मैं कौन हूँ? इस पृथ्वी का रचयिता कौन है? यह सृष्टि किसने बनायी है?' यही प्रथम जिज्ञासा या विचार संस्कार के रूप में हमारे डी.एन.ए. में पड़ा हुआ है। पर हम तो इस विचार से विमुख हो भोग और भौतिकता में लिप्त हो गये हैं। यही कारण है हमारे दु:खों का, हमारी अशान्ति का, हमारे क्लेश, रोग, अस्वस्थता और असंतुलन का। ये बढ़ते ही जा रहे हैं क्योंकि हमने भोग को ही सब कुछ माना है। यजुर्वेद की चालीसवीं संहिता में कहा गया है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्॥

जब तक प्राणी इस संसार में है, उसे भोग करना ही है, भोग से वह भाग नहीं सकता। भोग का वह त्याग नहीं कर सकता क्योंकि देह का, बुद्धि का, भावनाओं का एक धर्म होता है। हमारे समस्त व्यक्तित्व का एक धर्म है, एक कर्म है। जब तक यह व्यक्तित्व है, हमें भोगों को तो भोगना ही है। इनसे दूर रहना सम्भव नहीं है, परन्तु भोग जब एक लक्ष्य के रूप में सामने रहता है, तब उसमें लिप्तता बढ़ती जाती है, उसकी कामना प्रबलतर होती जाती है। फिर तो एक ऐसा दुश्चक्र बन जाता है कि मनुष्य अपना सुख, चैन और स्वास्थ्य, सब खो देता है।

योग के सोपान

हमारे ऋषि-मुनियों ने एक ऐसे समाधान का आविष्कार कर समाज के सामने प्रस्तुत किया है, जिसके द्वारा हम भोग को भी योग में परिणत कर सकते हैं, जिससे हमारे शरीर का सामंजस्य मन के साथ, एवं मन का आत्मा के साथ हो जाए। इसी समाधान का नाम है योग। योग का अर्थ है एक साथ आना, एक साथ जुड़ना। यह जोड़ने की प्रक्रिया पूर्णतया व्यावहारिक है, केवल दार्शनिक विचार नहीं है। इसके द्वारा हम अपने शरीर, अपनी इन्द्रियों एवं उनके द्वारा अर्जित ज्ञान को मन के साथ जोड़ते हैं। मन की विभिन्न शक्तियों को एक दिशा प्रदान करते हैं। आत्मशक्ति को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं। फिर सामंजस्य की स्थापना प्रत्येक स्तर पर होती है। इस विधि को ही योग कहते हैं।

जब महर्षि पतंजलि से प्रश्न किया गया कि योग क्या है, तो उन्होंने एक ही सूत्र में उत्तर दिया– *'अथ योगानुशासनम्।'* योग अनुशासन की ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आप अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संयत कर सकते हैं। इस योग के विभिन्न पक्ष हैं जिनमें पहला पक्ष है यम और नियम, दूसरा पक्ष है आसन और प्राणायाम, तीसरा पक्ष है प्रत्याहार और धारणा तथा चौथा पक्ष है ध्यान और समाधि।

यम और नियम के अभ्यास द्वारा मनुष्य अपने विचार और व्यवहार में परिवर्तन एवं संतुलन लाता है। आसन और प्राणायाम द्वारा सभी शरीरस्थ तंत्रों और तंत्रिकाओं में अनुशासन स्थापित किया जाता है। शरीर में स्वास्थ्य, शक्ति, ऊर्जा और स्फूर्ति का अनुभव किया जाता है। प्रत्याहार और धारणा के द्वारा चंचल मन को शान्त करने का प्रयत्न किया जाता है, मानसिक एकाग्रता में वृद्धि की जाती है। ध्यान के द्वारा अपने स्वरूप का दर्शन किया जाता है। अन्त में अपने नित्य शरीर का बोध होता है। यह योग की पारम्परिक प्रक्रिया है।

कुछ लोग कहते हैं ध्यान अत्युत्तम है, इससे ईश्वर का दर्शन होगा। कुछ कहते हैं कि प्राणायाम से कुण्डलिनी का जागरण होगा। योग इन सब को मानता है, स्वीकार करता है, लेकिन साथ ही यह भी कहता है कि योग में जो प्राप्ति होगी वह तो अभ्यास का परिणाम ही है। जब योगाभ्यास में मनुष्य स्वयं को परिपक्व बना लेता है, तब परिणाम के रूप में उसे पूर्णता की प्राप्ति होती है। परिणाम के रूप में उसे आत्मदर्शन होता है। परिणाम के रूप में उसकी अन्तर्शक्ति जाग्रत होती है।

योग में परिणाम माना गया है एक संतुलित आहार, विचार, व्यवहार तथा जीवन पद्धति को। इसलिये कहा गया है कि सर्वप्रथम शरीर में जो असंतुलन है, उसे दूर करो, क्योंकि जब तक असंतुलन की अवस्था बनी रहेगी, तब तक कोई लाभदायक परिणाम प्राप्त नहीं होगा। जिस प्रकार अर्जुन बाण चलाते समय केवल अपने लक्ष्य को देखते थे, ठीक उसी प्रकार से हमलोगों को भी लक्ष्य-भेद करने के लिये एकाग्रता की आवश्यकता है, शक्ति की आवश्यकता है। चंचल, तनावपूर्ण अथवा रोगपूर्ण अवस्था में लक्ष्य-भेदन सम्भव नहीं है। आप प्रयास कीजिये, बिना लक्ष्य की ओर देखे गोली चलाइये, गोली निशाने पर नहीं लगेगी। शस्त्र से मतलब नहीं, शस्त्र के पीछे जो शस्त्रधारी खड़ा है, महत्त्व उसका है। अगर मनुष्य एकाग्रचित्त है, संयत है, केन्द्रित है, तो उसका ही महत्त्व शस्त्र की अपेक्षा अधिक है। योग की यही विचारधारा है।

हमलोगों को सर्वप्रथम शरीर में सामंजस्य लाना होगा। फिर शरीर और मन के बीच तथा अंत में मन और आत्मा के बीच। आत्मा तो अति सूक्ष्म है, इस अति सूक्ष्म अवस्था को किस प्रकार पकड़ा जाए, जाना जाए, अनुभव किया जाए? यह किसी

के वश की बात नहीं है। मन आत्मा से थोड़ा स्थूल है, लेकिन फिर भी सूक्ष्म है। तो मन को किस प्रकार नियंत्रण में लाया जाए? इसकी चंचलता को कैसे समाप्त किया जाए? यह भी मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर है। शरीर स्थूल होता है और इसी शरीर के माध्यम से आप अपने मन को पार कर आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसा योगियों का मत है।

योगासन के प्रभाव

इसलिए योग में शरीर शुद्धि के लिये, शारीरिक क्षमता की जागृति के लिये आसनों का विधान है। महर्षि पतंजलि ने आसनों की परिभाषा दी है– *'स्थिरं सुखमासनम्।'* आसन उस शारीरिक भंगिमा को कहते हैं जिसमें स्थिरता का अनुभव हो, सुख का अनुभव हो। इसके पीछे एक विज्ञान है, एक रहस्य है। आप ध्यान से देखेंगे तो पाएँगे कि हमारा शरीर सदा ही तनाव और विक्षोभ की अवस्था में रहता है। शारीरिक तनाव की अवस्था में हमारे शरीर के तंत्र-तंत्रिकायें उत्तेजित हो जाते हैं। श्वसन तंत्र में, उदर प्रदेश में, मस्तिष्क में उत्तेजना का अनुभव होगा। इस उत्तेजना के कारण तनाव की अनुभूति होगी। इसके विपरीत है विश्रांति की स्थिति। विश्रांति की अवस्था में शरीर भौतिक रूप से विश्राम में रहता है। शरीर के जो स्थूल अंग हैं वे विश्राम प्राप्त करते हैं, परन्तु शरीर की सूक्ष्म प्रक्रिया में विश्रांति नहीं आती।

यदि आपको इस पर विश्वास नहीं होता तो इंग्लैण्ड में हुए एक शोध के बारे में बतलाता हूँ, जिसमें मस्तिष्क के चित्र उतारे गये हैं। उन चित्रों को देखने से पता चलता है कि विश्राम की अवस्था में भी मस्तिष्क में उत्तेजना रहती है जबकि योग अभ्यास करने के बाद मस्तिष्क में शान्ति की अनुभूति होती है। जिसे आप विश्राम की अवस्था मानते हैं, उस अवस्था में भी आन्तरिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के तनाव मस्तिष्क में उत्पन्न होते रहते हैं। इसे तो अपने जीवन में ही देख सकते हैं। जब आप रात्रि में बिस्तर पर लेटते हैं तो क्या उस समय आप शान्त रहते हैं? नहीं। आप किसी-न-किसी प्रकार की चिन्ता या परेशानी से उद्विग्न रहते हैं। इसी उद्विग्नता में निद्रा आती है। यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है कि आपका शरीर, आपका मन प्रतिक्षण तनाव और विश्रान्ति की अवस्थाओं से गुजरता रहता है।

यदि हम अपने भीतर की प्राण-शक्ति को संचालित कर सकें तो वह इधर-उधर नहीं बिखरती और एक शक्तिशाली स्वरूप धारण करती है। इसी अवस्था को योग में कहते हैं–प्राणोत्थान, प्राणों की जागृति। योग दर्शन में बताया गया है कि ब्रह्माण्ड में व्याप्त महाप्राण हमारे शरीर में पाँच रूपों में अवस्थित है–अपान, समान, उदान, व्यान और प्राण। ये सभी अपना-अपना काम करते रहते हैं, परन्तु जब सभी एक ही दिशा में काम करते हैं, तब शरीरस्थ चक्रों का भेदन होता है, प्राणों की जागृति होती है, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। हम चाहे आसन

करें या प्राणायाम, इनका प्रयोजन है प्राणों की जागृति, चक्रों को स्पन्दित करना, कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना।

लोग आसन को मात्र एक शारीरिक क्रिया के रूप में समझते हैं। अगर आप किसी भंगिमा में सुखपूर्वक बैठ सकते हैं और उस भंगिमा में प्राणों का प्रवाह सुचारु रूप से होता है तो उस भंगिमा को हम आसन कहते हैं। यदि प्राणों का प्रवाह सुचारु रूप से नहीं होता तो वह मात्र व्यायाम है। आसनों का उद्देश्य है प्राणों का उत्थान, उसका सुचारु रूप से प्रवाह। इस प्रक्रिया में देखा गया है कि अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी दूर हो जाते हैं। इसका कारण है आपकी आन्तरिक शक्ति का जागरण। ये आसन आपकी आन्तरिक जीवनी शक्ति का, आपके प्राणों का जागरण करते हैं। इसलिए महर्षि पतंजलि ने आसन और प्राणायाम को योग के शारीरिक पक्ष के रूप में महत्त्व प्रदान किया है।

मानव व्यक्तित्व का समन्वित विकास

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे, 'मानव बुद्धि, भावना और कर्म का समुच्चय है।' अपने दैनिक क्रिया-कलापों में मनुष्य बुद्धि, भावना और कर्म, तीनों का उपयोग करता है। मनुष्य एकांगी नहीं हो सकता कि केवल बुद्धि का प्रयोग करे, भावना एवं कर्म को भूल जाए, या केवल भावनाओं का प्रयोग करे, बुद्धि और कर्म को भूल जाए। अगर केवल कर्म करे और बुद्धि एवं भावना को भूल जाए, तो क्या जीवन में सफलता मिलेगी? सम्भव नहीं है। इन तीनों का सन्तुलित संयोग आवश्यक है। जब तक इनका प्रयोग एक साथ नहीं होता, व्यक्ति कर्म-सिद्ध नहीं हो सकता। आपमें ईश्वर-दर्शन या कुण्डलिनी जागरण की कामना हो सकती है, लेकिन आपकी

वर्तमान अवस्था में उसकी कतई सम्भावना नहीं है, क्योंकि आपमें वह पात्रता अभी नहीं है, आपकी वह तैयारी अभी नहीं है कि आप उन अनुभवों को प्राप्त कर सकें।

हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी से किसी व्यक्ति ने पूछा था कि क्या इस जीवन में ईश्वर-दर्शन सम्भव है। गुरुदेव ने कहा, 'नहीं, सम्भव नहीं।' व्यक्ति ने पूछा, 'तो हम ये साधनाएँ, आसन, प्राणायाम, योग आदि क्यों करते हैं?' गुरुदेव ने उसे समझाया, देखो, खोपड़ी सीमित है और ईश्वर असीम तत्त्व है। एक असीम तत्त्व को तुम सीमित पात्र में कैसे भर सकते हो? एक कटोरी में सागर का जल भर सकते हो? सागर उसमें कैसे समायेगा? जो साधना हम करते हैं उसका एक प्रयोजन है। हम अपनी सीमाओं को पार कर अपनी चेतना को असीम बनाने का प्रयास करते हैं। जिस क्षण हमारी चेतना की सीमाएँ टूट जाएँगी, असीम और व्यापक हो जाएँगी, उस समय जो होना होगा हो जाएगा। अवश्य हो जाएगा, लेकिन प्रयोजन यही रहना चाहिए—मानव अस्तित्व की सीमाओं का अतिक्रमण, मानव जीवन की सीमाओं को पार करना। जब तक हम अपनी सीमाओं को तोड़ नहीं देते, तब तक हममें पात्रता नहीं आएगी। और जब हम पात्र ही नहीं, तो ग्रहण कहाँ करेंगे? किसे करेंगे? कैसे करेंगे?

एक युवा वैज्ञानिक अपने किसान पिता से कहता है कि मैंने एक ऐसे रसायन की खोज की है जिसे जिस किसी पात्र में रखिये, उसे जला देगा। पिता ने सरल भाव से पूछा, 'बेटा, अभी तुमने उसे किस पात्र में रखा है?' यही बात यहाँ भी लागू होती है। हम तो नश्वर हैं, परिवर्तनशील हैं, और वह है ईश्वर, अपरिवर्तनशील। उस शक्ति, उस चेतना, उस तत्त्व का अनुभव करने की क्षमता हममें है क्या? नहीं है। योग की इन विधियों से मनुष्य अपने अन्दर पात्रता लाता है, क्षमता उत्पन्न करता है। अत: शरीर, मन और आत्मा के आयामों का, बुद्धि, भावना और कर्म की क्षमताओं का समन्वय अति आवश्यक है।

योग के तीन आयाम

योग को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पहला चिकित्सा विज्ञान, दूसरा मनो-विज्ञान, और तीसरा जीवन विज्ञान। योग का जो अंग शरीर से सम्बन्धित है वह चिकित्सा विज्ञान है, अर्थात् आसन और प्राणायाम। आप शायद विश्वास न करें, पर विश्व में योग के ऐसे अद्‌भुत प्रयोग हुए हैं जिनसे पुष्टि होती है कि कैंसर जैसा मारक रोग भी योगाभ्यास से ठीक हो जाता है। मुंगेर में नवम्बर 1993 में जो विश्व योग सम्मेलन हुआ था, उसमें हमारे इंग्लैण्ड स्थित योगाश्रम की संचालिका, स्वामी प्रज्ञामूर्ति ने घोषणा की थी कि योग के द्वारा 'एड्स' जैसा रोग भी दूर हो सकता है। ऐसा प्रयोग उन्होंने किया है। एड्स ऐसा रोग है जिसका समाधान आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास नहीं है। परन्तु वह समाधान योग के पास है। योग का

जो पक्ष शरीर में संतुलन लाता है, शरीर की क्षमता को जाग्रत करता है, उसका स्वरूप चिकित्सात्मक भी है।

योग का दूसरा पक्ष है मनोवैज्ञानिक। महर्षि पतंजलि ने इस पक्ष में प्रत्याहार तथा धारणा को रखा है। मन चंचल है ही, और रहेगा भी क्योंकि इसे संयत रखने की शिक्षा हमें कभी मिली ही नहीं है। जब तक मन चंचल रहेगा, बिखरा रहेगा, जैसे एक बिजली के बल्ब की रोशनी चारों ओर बिखरती है, तब तक आप उसका सार्थक प्रयोग नहीं कर सकते। लेकिन बिजली के बल्ब से निकलने वाली प्रकाश किरणों को यदि हम एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दें तो उसका रूप हो जाता है लेज़र किरण का, जिसमें इतनी शक्ति होती है कि वह लोहे की चादर में छेद कर सकती है। ठीक इसी प्रकार यदि हम मन की ऊर्जा को एक बिन्दु पर केन्द्रित कर दें, अपनी अनुभूतियों और मानसिक अवस्थाओं को एकाग्र कर दें, तो हमारा मन एक प्रचण्ड शक्ति का रूप धारण कर सकता है। प्रत्याहार और धारणा में इस विधि की शिक्षा दी जाती है। यही है योग का मनोविज्ञान। इसके द्वारा आप अपने मन को समझ सकते हैं और उसे केन्द्रित कर उसकी विक्षिप्त शक्तियों को एकाग्र करना सीखते हैं।

जब मन एकाग्र एवं शान्त हो जाता है, तब प्रारम्भ होता है योग का जीवन-विज्ञान पक्ष। इस पक्ष में आते हैं ध्यान और समाधि। इन्हें समझने के लिए इन दोनों के व्यावहारिक पक्ष को देखना चाहिए। लोग तो समाधि के नाम से घबरा जाते हैं कि पता नहीं इसमें क्या हो जाए। पर यह है बड़ी व्यावहारिक पद्धति। ध्यान और समाधि शक्ति के केन्द्रीकरण और चेतना की जागृति के प्रतीक हैं। चेतना और शक्ति सृष्टि के दो मौलिक तत्त्व हैं। बचपन में मैं एक दिन अपने गुरुदेव से खेल-खेल में पूछ बैठा था कि एक लंगड़ा और एक अन्धा हैं, वे दोनों कहीं दूर जाना चाहते हैं, कैसे पहुँचेंगे, आप बताइये तो। गुरुदेव मुस्कुरा उठे और कहने लगे, अरे, इसमें कौन-सी बड़ी बात है, इसका उत्तर मैं थोड़ी देर बाद दूँगा। उन्होंने इसका उत्तर दिया अपने एक सत्संग में। हमारे अन्दर जो चेतन तत्त्व है, वह लंगड़ा है। देख तो सकता है पर चल नहीं सकता। हमारे भीतर जो शक्ति तत्त्व है, वह चल तो सकता है, पर देख नहीं सकता। अगर शक्ति तत्त्व पर शिव तत्त्व आरूढ़ हो जाए, अर्थात् अंधे के कन्धे पर लंगड़ा चढ़ जाए, तो दोनों कहीं भी जा सकते हैं। लंगड़ा मार्ग बतायेगा और अन्धा उसके निर्देशानुसार चलता जायेगा। हमने तो पूछी थी एक छोटी-सी पहेली, पर गुरुदेव ने अनुग्रह कर इतना सारगर्भित उत्तर दिया जिसे मैं आज तक नहीं भूला हूँ। यह है भी वास्तविक सत्य। चेतना में साक्षी होने, द्रष्टा होने की क्षमता है और शक्ति गतिशील होते हुए भी अन्धी है।

इन दोनों का संयोग कर चलना हमारा काम है। इसलिए शक्ति का उत्थान होना चाहिए और साथ ही चेतना का विकास होना चाहिए। इसका अनुभव होता है ध्यान की अवस्था में और इसकी पूर्णाहुति होती है जब दोनों पूर्णत: जाग्रत हो

जाते हैं। जागृति के पश्चात् जब वे एकाकार हो जाते हैं तो उस रूप को योग शास्त्र में कहते हैं अर्द्धनारीश्वर रूप। तभी ध्यान और समाधि पूर्ण होते हैं।

संक्षेप में योग का क्रम यही है कि इसका प्रारम्भ शरीर से हो। शारीरिक संतुलन प्राप्त करने के बाद मन के क्षेत्र में प्रवेश किया जाए। मानसिक संतुलन एवं संयम प्राप्त करने के बाद आचार-व्यवहार स्वत: शुद्ध हो जाते हैं। जिस समय भीतर में छल, कपट, ईर्ष्या, क्रोध, कामना, महत्त्वाकांक्षा तथा राग-द्वेष नहीं रह जाएँगे, उस समय ध्यान की अवस्था को प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। यही है योग की विधि।

समाज में योग का समावेश

आज इसी योग को विश्व के बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक और चिकित्सक अपना रहे हैं। विश्व के कोने-कोने में योग को जीवन से जोड़ा जा रहा है। पश्चिम के देशों में सन् 1977 से ही योग शिक्षा का अनिवार्य अंग हो गया है। फ्रांस, इंग्लैंड, कैनेडा और अमेरिका जैसे देशों में हमारे संन्यासी स्कूलों के शिक्षकों को योग सिखाते हैं, तथा योग प्रशिक्षित शिक्षकगण अपनी-अपनी कक्षा में छात्रों को योग सिखाते हैं। वे कैसे सिखाते हैं? प्रत्येक कक्षा के प्रारम्भ में एक आसन और एक प्राणायाम कराया जाता है। दिनभर की आठ घंटियों में प्रत्येक घंटी के बाद पाँच मिनट के लिए आसन-प्राणायाम करा दिया जाता है, अर्थात् दिनभर में कुल आठ बार। यह व्यायाम या पी.टी. की तरह नहीं होता, बल्कि कक्षा की सामान्य प्रक्रिया और वातावरण में ही आत्मसात् कर लिया जाता है। इस प्रयोग को बहुत अधिक सफलता मिली है।

चिकित्सा क्षेत्र में भारत तथा विश्व के अनेक देशों में योग को चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनाया जा रहा है। कहीं कैंसर की रोकथाम के लिये, कहीं मधुमेह के उपचार के लिये, कहीं पर उच्च रक्तचाप नियंत्रण के लिए तो कहीं पर दमा के

उपचार हेतु। अन्य रोगों के उपचार के लिये भी योग का व्यापक रूप से उपयोग हो रहा है। बिहार में स्वास्थ्य विभाग के सभी डॉक्टरों को योग का प्रशिक्षण लेने का निर्देश हुआ है। बिहार के लगभग सोलह हजार सरकारी सेवारत डॉक्टर अब योग का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से प्राप्त करेंगे।

एक अन्य क्षेत्र जहाँ योग की आवश्यकता महसूस की गई, जेल है। भारत के विभिन्न राज्यों और कई देशों में बन्दियों के व्यक्तित्व-परिवर्तन हेतु योग का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। सन् 1993 के विश्व योग सम्मेलन में भारत के थल सेनाध्यक्ष आये थे और उन्होंने अनुरोध किया कि सैनिकों को भी योग का प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे अपनी क्षमता बढ़ा सकें। सैनिकों को ऊँचे पहाड़ों पर, गर्म मरुस्थलों में रहना पड़ता है। उनकी कुछ मानसिक एवं भावनात्मक समस्याएँ होती हैं। सैनिकों की इन समस्याओं के समुचित समाधान हेतु योग का प्रवेश सेना में भी हो रहा है।

इस प्रकार जीवन का चाहे जो क्षेत्र हो—व्यावसायिक, सामरिक, चिकित्सात्मक, शैक्षिक या आध्यात्मिक, उसमें योग का प्रयोग किया जा सकता है। इन सब प्रयोगों से ऐसा प्रतीत होता है कि आज विश्व ने योग की महत्ता और गुणवत्ता को समझा है तथा उसे एक जीवन विज्ञान के रूप में स्वीकार कर लिया है। शिक्षा, चिकित्सा, व्यक्तित्व-परिवर्तन जैसे क्षेत्रों में अनेक शोध कार्य भी चल रहे हैं। देखा जा रहा है कि ध्यान की अवस्था में चेतना में क्या परिवर्तन होता है, जप के समय क्या परिवर्तन होता है। योग जिन तथ्यों का दावा करता है वह भ्रान्ति है या वास्तविकता, इस पर शोध हो रहा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि योग प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक अनिवार्य अंग होगा। उस समय मानव जीवन में एक क्रान्ति आयेगी और योग पूरे समाज में परिवर्तन ला देगा।

—योग साधना माला–1 से उद्धृत

जेलों में योग के प्रयोग

स्वीडन के एक समाचार-पत्र, 'डागेन्स नीहेतर' (दैनिक समाचार) के 12 सितम्बर 2007 के संस्करण से साभार उद्धृत एवं अनूदित

नोर्टेलिये जेल में संगीन अपराधों के लिए सजा काट रहे कैदियों को अपने क्रोध पर नियंत्रण करना सिखाया जा रहा है। खास बात यह है कि इसमें योग महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। 'योग जीवन में संतुलन और सामंजस्य लाता है और कैदियों को अनुशासित जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है। जो अपने जीवन में बदलाव लाना चाहते हैं, उनके लिए यह बहुत अच्छा साधन है।'

जेल की बेसमेंट में एक बड़े कमरे को योग हॉल में परिवर्तित किया गया है। सफेद दीवारें, सामने महात्मा बुद्ध की नीले रंग की प्रतिमा–देखने में यह स्थान किसी भी योग केन्द्र की तरह प्रतीत होता है, लेकिन यह स्थान ऊँची दीवारों एवं कांटेदार तार से घिरा है और इसके द्वार हमेशा बंद रहते हैं। एक बात और, यहाँ योगाभ्यास सीखने वाले सभी लोग लम्बी सज़ा काट रहे हैं।

नोर्टेलिये जेल में योग शिक्षिका, एवा साइलिट्ज़ कैदियों के लिए सप्ताह में दो बार योग कक्षाओं का आयोजन करती है। कैदी डीवीडी, सीडी और किताबों के माध्यम से भी स्वयं योग का अभ्यास कर सकते हैं। इस कार्यक्रम में कैदी कल्याण विभाग का पूरा सहयोग है। यह योग प्रशिक्षण कार्यक्रम सन् 2002 में शुरू हुआ। इस सब से उत्साहित एवा अब नोर्टेलिये जेल के कैदियों के साथ मिलकर यहाँ के स्टूडियो में ही योग पर एक डीवीडी तैयार करने जा रही है।

एवा बताती है, 'जब मुझे यहाँ आने का प्रस्ताव मिला, तब मैं घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की सहायता के लिए काम कर रही थी। उस समय मेरे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही था कि महिलाओं को प्रताड़ित करने वाले मर्दों को सही दिशा की ओर कैसे ले जाया जाए। साथ ही मैं इस बात पर भी चिंतन कर रही थी कि समाज में बढ़ रही अहिंसा, अपराध और नशे जैसी समस्याओं पर किस प्रकार लगाम लगाई जा सकती है। क्या योग ऐसे अपराधियों का जीवन बदलने में सहायक होगा?'

तीन साल तक गर्मियों की छुट्टियों के दौरान योग सिखाने के बाद एवा को एग्रेशन रिप्लेसमेंट ट्रेनिंग नामक कार्यक्रम से जुड़ने का प्रस्ताव मिला। इस कार्यक्रम के तहत कैदियों को अपने क्रोध और आक्रोश पर नियंत्रण तथा बेहतर सामाजिक आचार-व्यवहार सिखाया जाता है। योग इसमें बहुत सहायक सिद्ध हो रहा है क्योंकि इसका एक अंग आचार-व्यवहार से जुड़ा है। योग में व्यक्ति शरीर के माध्यम से अपने अंतर्मन से भी जुड़ता है। नोर्टेलिये जेल युवा अपराधियों के लिए भी एक नया कार्यक्रम शुरू करने जा रही है। इसमें भी योग को शामिल किया जा रहा है।

एवा साइलिट्ज़ सत्यानंद योग परम्परा में प्रशिक्षित है। इस योग परम्परा में हठ योग के अभ्यास तो हैं ही जिनसे व्यक्ति शारीरिक स्तर पर लचीलापन और ऊर्जा का अनुभव करता है, साथ ही शिथिलीकरण और ध्यान की विधियों से मानसिक शांति भी प्राप्त करता है। व्यक्तित्व में योग का बीज अंकुरित होने पर हर स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

हाल ही में एवा ने अमेरिका में आयोजित योग सम्मेलन में भाग लिया जिसका विषय था–सामाजिक परिर्वतन के लिए योग। वहाँ उसने एक कार्यशाला में नोर्टेलिये जेल के अनुभवों को सांझा किया और 'अपराधियों के सुधार में योग की भूमिका' विषय पर शोधपत्र भी प्रस्तुत किया जो उसने उप्पसला विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर डिग्री के लिए तैयार किया था। इस शोधपत्र में कैदियों के साथ साक्षात्कार और प्रशनोत्तरियाँ भी शामिल थे।

इस शोधपत्र के निष्कर्षों से स्पष्ट है कि प्राय: सभी कैदियों के योग के प्रति विचार सकारात्मक थे। कैदियों के अनुभव कुछ इस प्रकार थे–

- मानसिक शांति और नियंत्रण में वृद्धि
- अध्ययन करने के लिए प्रेरणा और धारणा में बढ़ौतरी
- शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर सुधार
- शांति का अनुभव और चैन की नींद सोना

उनमें से कुछ ने अपने उद्‌गार यूँ अभिव्यक्त किए–

- 'योग और ध्यान के माध्यम से मुझे अपनी पूर्व की गलतियों का अहसास हुआ। मैं यह जान गया हूँ कि स्वयं को और दूसरों को माफ करना आंतरिक शांति की कुंजी है।'

- 'योग के माध्यम से स्वास्थ्य लाभ होता है। यह दिनचर्या का अनिवार्य अंग होना चाहिए। यह ऐसी विधि है जिससे हमेशा कुछ अच्छा ही होता है।'
- 'मैंने योग के माध्यम से अपनी ज़िंदगी के बारह वर्षों की सफाई कर डाली है। अब मैं एक नई ऊर्जा से भरा हूँ और ऐसी भावनाओं का अनुभव कर रहा हूँ जो मुझमें पूरी तरह मर चुकी थीं। यहाँ तक कि मैं अब रो सकता हूँ जो मैं पहले नहीं कर पाता था। ऐसा लगता है मानो मेरे कठोर हृदय में किसी ने छेद कर दिया है और अंदर से सब संवेग फूटकर बाहर निकल रहे हैं।'

स्वीडन पहला देश नहीं है जहाँ की जेलों में योग सिखाया जा रहा हो। अमेरिका में सत्तर के दशक में मानव करुणा संघ की स्थापना हुई थी और इंग्लैंड में अस्सी के दशक में 'द प्रिज़न फीनिक्स ट्रस्ट'। ये संस्थाएँ कैदियों के लिए योग शिक्षक प्रशिक्षित करती आ रही हैं। इनके शोध से पता चला है कि योग का अनुभव पाकर कैदी कम दवाओं का इस्तेमाल करते हैं और उनमें अपनी ज़िंदगी में कुछ करने की चाहत और उमंग पैदा हो जाती है।

नोर्टेलिये जेल में योग को अपनाए जाने से बहुत सुधार हुआ और इसमें वहाँ के टीवी सिस्टम का इस्तेमाल भी सराहनीय रहा। एवा के अनुसार टीवी एक ऐसा साधन है जिसे मनोरंजन के बजाय इस तरह के प्रशिक्षण कार्यों के लिए और अधिक इस्तेमाल किया जा सकता है।

क्या उसे कभी अपराधियों के सामने डर नहीं लगा? वह कहती है, 'नहीं, बल्कि मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे कितने संवेदनशील होते हैं। सिर्फ दो बार मुझे अनुशासन संबंधी थोड़ी परेशानी हुई, लेकिन वे मामूली घटनाएँ थीं। बहुत-से कैदियों के लिए योग का अभ्यास करना बहुत चूनौतीपूर्ण रहा। शुरू में उन्हें थोड़ी शर्म भी आती थी। उनकी नजर में यह महिलाओं की चीज थी। कई अभ्यासों को सीखने के लिए धैर्य और एकाग्रता की आवश्यकता होती, और उन्हें ये कठिन लगते। लेकिन वे कोशिश जरूर करते। बहुत-से कैदी योग के प्रभावों से काफी हैरान हैं। कई बार योग कक्षा के समय वे किसी बात पर गुस्सा होते और कक्षा में भाग लेने का मन नहीं होता। पर कक्षा पूरी करने के बाद वे शांत अवस्था में बाहर निकलते। योग उन्हें संतुलित बनाता है और अनुशासित रहने का अवसर प्रदान करता है। यह ऐसे लोगों के लिए बहुत अच्छा साधन है जो वास्तव में अपनी ज़िंदगी बदलना चाहते हैं।'

जोसेफ को एक संगीन अपराध के लिए बारह साल कैद की सजा हुई है। वह पाँच साल पूरे कर चुका है। वह अपने बारे में कोई सफाई नहीं देता। वह मानता है कि उसने अपराध किया है और इस सजा का वह हकदार है। उसका कहना है, 'पहली बार मुझे लगा है कि जेल विभाग ने सही कदम उठाया है। अगर योग से एक प्रतिशत कैदियों का जीवन भी बदल जाता है तो यह सभी जेलों में योग लाने के लिए काफी है। मेरे लिए योग ज़िंदगी का बहुत बड़ा मोड़ साबित हुआ।'

जोसेफ का जन्म मध्य-पूर्व एशिया के एक युद्ध प्रभावित क्षेत्र में हुआ। जब वह बड़ा हो रहा था तो वहाँ हिंसक घटनाओं का होना आम बात थी। बचपन से ही वह एक आतंकवादी गिरोह का सदस्य बन गया और उसने अपने जीवन में ऐसी-ऐसी चीजें देखी हैं जो किसी को नहीं देखनी चाहिए। बीस साल की उम्र में वह स्वीडन आया।

'मैं खुद पर नियंत्रण नहीं रख पाता था। हमेशा झगड़ता रहता था और किसी के जरा-से उकसाने पर उबल पड़ता था। ऐसे में आप बिना सोचे-समझे पागलपन पर उतर आते हैं। मेरे साथ भी यही हुआ। मैं बुरी संगत में था और नशे का भी आदी हो चुका था।'

वह आगे कहता है, 'जेल में रहना बड़ा मुश्किल काम है। अपराध-बोध और ग्लानि की भावना से निरंतर जूझना पड़ता है। ऊँची दीवारों के बीच दिन-रात कैद रहते हो और मन करता है कि किसी तरह भाग निकलो। अगर कोई मानसिक रूप से मजबूत न हो तो जरूर पागल हो जाएगा।' योग ने उसे जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण दिया है।

'अब मैं अपनी कमजोरियों को देख सकता हूँ। मुझे अहसास हो गया है कि सबको अपने कर्मों का फल मिलता है। अब मैं खुद पर नियंत्रण रख पाता हूँ। जेल में हमेशा ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जो परेशान कर देती हैं, लेकिन अब तीन लम्बी और गहरी साँसें स्वयं को शांत करने के लिए पर्याप्त हैं।'

'पहले मेरे मन और आत्मा में बिल्कुल शांति नहीं थी। मुझे स्वयं से घृणा थी और इसी वजह से मैं दूसरों से भी घृणा करता था। सबसे पहले मुझे आत्मसम्मान जगाना था। इससे मैं दूसरों का सम्मान करना भी सीख गया। और तब मुझे लोगों को डरा-धमका कर सम्मान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रही, जैसा कि अपराध जगत् में होता है।'

शुरू में योगाभ्यास काफी संघर्षपूर्ण था, शारीरिक रूप से भी, मानसिक रूप से भी और भावनात्मक रूप से भी। जोसेफ बॉडी-बिल्डर था और उसकी कद-काठी भी वैसी थी। उसमें लचीलापन नहीं था। कुछ अभ्यास तो वह बिल्कुल नहीं कर पाता था। इससे वह परेशान हो जाता था और शुरुआती तीन महीनों में कई बार योगाभ्यास छोड़ने का मन भी बना लिया था। उसके साथ के अन्य कैदियों ने तो छोड़ भी दिया, लेकिन इसका फायदा उसे हुआ। इससे उसे अकेले अभ्यास करने का, योग शिक्षक का पूरा ध्यान पाने का मौका मिला। जोसेफ के अनुसार, 'कुछ समय बाद योगाभ्यास आसान लगने लगा और आखिर ऐसा समय भी आया जब मैं अपने कक्ष में रोज सुबह-शाम अभ्यास करने लगा।'

जोसेफ बताता है कि योग से उसके शरीर और मन पर कई सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। अब उसे सुकून की नींद आती है। उसके रक्तचाप और हृदय गति में गिरावट

आई है। वह अधिक मानसिक स्पष्टता का अनुभव करता है। इससे पहले उसके मन में हमेशा विचारों का जमघट रहता था, वह कभी एकाग्र नहीं हो पाता था। अब वह इकॉनोमिक्स की पढ़ाई कर रहा है और आगे चलकर वह योग प्रशिक्षक बनना चाहता है। जब उसकी पत्नी और बच्चे उससे मिलने के लिए जेल में आते हैं तो मिलकर योगाभ्यास करते हैं। वह स्वीडिश, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन भाषाओं में बच्चों के लिए सरल योगाभ्यासों की एक पुस्तक भी लिख रहा है।

जेल अब ज्यादा शांत रहता है। जोसेफ बताता है कि एक बार जेल का वार्डन उन्हें शाम को कमरे में बंद करना भूल गया। 'अगर यही एक साल पहले हुआ होता तो न जाने क्या हो गया होता। अगर हमारी किसी से दुश्मनी होती तो उसे मार देते, या उस जगह को पूरी तरह तहस-नहस कर देते, या फिर सिपाहियों को चकमा देकर फरार हो जाते। लेकिन उस रात ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमने चॉकलेट केक बनाया, फिल्म देखी और ताश की बाजी खेली। फिर हम रसोईघर में ही कंबलें बिछाकर एकसाथ सो गए। यह सब एवा और उसके योग प्रशिक्षाण के कारण हुआ। अब जेल अधिकारियों के साथ हमारे अच्छे संबंध हैं और जेल प्रशासन भी योग की इस परियोजना में पूरा सहयोग कर रहा है।'

जेल के मैनेजर एन्डर्स एक्सट्रोम का मानना है कि योग पारम्परिक कैदी-सुधार कार्यक्रम का अहम अंग बन गया है। 'जो कैदी गुस्सैल थे वे शांत हो गए हैं, और जो पढ़-लिख रहे हैं, वे अच्छे अंक प्राप्त कर रहे हैं। हम परिणामों का विश्लेषण कर रहे हैं और विचार कर रहे हैं कि इस तरह के कार्यक्रम स्वीडन की जेलों में बड़े स्तर पर चलाए जाएँ। हम स्वीडन के सबसे बड़े अस्पताल और चिकित्सा अनुसंधान केन्द्र, कैरोलिंस्का इंस्टीट्यूट के साथ मिलकर एक शोध करने पर भी विचार कर रहे हैं। शोध में एटेंशन डेफिशियंसी सिंड्रोम के उपचार पर अध्ययन किया जाएगा। एटेंशन डेफिशियंसी सिंड्रोम से एक चौथाई कैदी ग्रस्त हैं। हम इसके इलाज के लिए योग का सहारा लेने जा रहे हैं।'

चरम लक्ष्य

रबिया इराक की एक महान् महिला सूफी संत हुई हैं। एक सूफी संत उनसे बार-बार पूछा करते थे, 'मानव जीवन का चरम लक्ष्य क्या है?' बार-बार पूछने पर रबिया ने इसके उत्तर में उनके पास दो चीजें भेजीं– मोम और सुई। साथ ही यह संदेश भी दिया– 'मोम की भांति जनहित में स्वयं को गलाकर दूसरों को प्रकाश दो, जन-मानस का अंधकार दूर करो। सुई की भांति अपने लिए कुछ भी न चाहकर दूसरों की नि:स्वार्थ सेवा करो, टूटे दिलों को जोड़ने का काम करो। यही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। इसी में प्रभु की प्रसन्नता निहित है।'

है यही प्रार्थना

शांत धवल उत्तुंग शिखर,
मुद्गल की पावन धरती पर,
है स्वप्न हुआ साकार यहाँ,
गंगा दर्शन की भूमि पर।

स्वर्ण जयंती पूर्ण हुई,
हीरक की ओर पद बढ़ रहे,
एक अध्याय पूर्ण हुआ,
नवसृजन पुन: गुरु कर रहे।

यम-नियमों का बीज डालकर,
यौगिक जीवन का अंकुरण होगा,
पुन: फलेगी योग विद्या,
भारत-भू महिमा मंडित होगा।

मन:प्रसाद और जप से जीवन,
आलोकित व स्पंदित होगा,
देकर क्षमा और आदर,
मन पुष्पित व पल्लवित होगा।

शम-दम हैं कठिन पर दु:साध्य नहीं,
संयम से हृदय की ज्योति जले,
कर रहा प्रयास हर शिष्य यही,
अपने लक्ष्य की ओर चले।

देकर जीवन तुमको गुरुवर,
हर श्वास में सेवा संकल्प रहे,
जो भटकूँ यदि लक्ष्य से कभी,
यम-नियमों की डोर बंधी रहे।

है यही प्रार्थना हर क्षण गुरुवर,
श्रद्धा से हृदय पूर्ण रहे,
विश्वास सदैव सुदृढ़ रहे।

–संन्यासी सुकीर्ति, राजनाँदगाँव

योग का नूतन आयाम–प्रसन्नता एवं जप

संन्यासी यौगप्रिया, पटना

प्रसन्नता उर आनहू सबहिं कहैं समझाए।
षट्रिपु द्वार खड़े हैं प्रभु जी दीजो राह बताए॥

योग का इतिहास नया नहीं, सनातन रहा है, जिसे भगवान शंकर ने माता पार्वती को, श्रीराम ने शबरी को, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तथा अन्य मनीषियों ने भी समय-समय पर बताया है। सबके कथनों का सार रहा है–परमानन्द की अनुभूति। ऐसी अनुभूति जो शाश्वत हो, क्षणिक नहीं। परन्तु कुछ पूर्वाग्रहों के कारण यह अमूल्य निधि बस साधु-संन्यासियों तक ही सीमित होकर रह गई। समाज में एक विचारधारा ने जन्म लिया कि योग संन्यासियों का, साधुओं का विषय है, गृहस्थों का नहीं और धीरे-धीरे यह विद्या लुप्तप्राय हो गई।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।* जब समाज में मानवीय सद्गुणों का ह्रास और कट्टरपंथियों का बोल- बाला होने लगा तो अल्मोड़ा के एक छोटे-से गाँव में श्री स्वामी सत्यानन्द जी का अवतरण ईश्वर की अनुकम्पा बनकर हुआ। उन्होंने अपने गुरु, स्वामी शिवानन्द जी के आदेश से योग रूपी अमृत की धारा को ऋषिकेश से बहाकर दुनिया के कोने-कोने तक पहुँचा दिया। योग के कल्पवृक्ष का ऐसा बीज बोया कि हर घर में यह पुष्पित-पल्लवित हो आज वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका है। श्री स्वामीजी ने इसे कंदराओं से निकालकर मानवता के कल्याण हेतु सर्वसुलभ बनाया, जिसे आज 'सत्यानन्द योग पद्धति' के नाम से सारा विश्व जानता है।

सन् 1963 में स्वामी सत्यानन्द जी ने बिहार योग विद्यालय की स्थापना की और 1988 में इसकी बागडोर अपने कर्मठ उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी के हाथों में थमाकर परिव्राजक की भाँति अपने अगले मिशन पर चल पड़े। सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी 'स्वर्ण जयंती' बड़ी धूम-धाम से मनाई जिसे सारी दुनिया आश्चर्यचकित होकर देखती रह गई। छोटी-सी मुंगेर नगरी 'योग नगरी' बन विश्व में देदीप्यमान् हो उठी।

समय बीतता गया, परिस्थितियाँ बदलती गईं और एक बार पुन: मानवता अपने दु:ख-दर्द से बेचैन हो उठी। ऐसे में प्रश्न उठता है कि जब घर-घर में योग का प्रचार हो गया है और लोगों ने इसे अपनी दिनचर्या का अभिन्न अंग भी बना लिया है तो वह कौन-सा मूल-मंत्र है, योग का कौन-सा आधार है जिससे हम अछूते रह गए, वंचित रह गए?

पिछले कुछ वर्षों से हमारे गुरुदेव, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी ने इस विषय पर गहन चिंतन किया है। उनके प्रत्येक सत्संग में ये चिंताजनक बातें उभर कर आती रही हैं और आँखों में विकलता दृष्टिगोचर होती रही है–

देख नियति का खेल निराला, व्यथित हुआ एक योगी
योग की महिमा का स्वरूप, क्या हमने सचमुच आँका?

निष्कर्ष यह निकला कि जिस अमृत का पान करके हमारे तृषित ओठों ने अपनी मात्र प्यास बुझाई उसकी पवित्रता का लेशमात्र भी हमने स्पर्श नहीं किया। और बस यहीं हम चूक गए। अर्थात् योग का शारीरिक पक्ष तो उजागर होता गया पर आध्यात्मिक पक्ष गौण रहा। उस आध्यात्मिक पक्ष का आधार है–सद्विचार, सत्कर्म और सद्व्यवहार।

इस परिस्थिति में एक ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है जो स्वयंसिद्ध, दृढ़ संकल्पित, कर्मठ, सत्यनिष्ठ, गुरुभक्त एवं मानवता के प्रति पूर्ण समर्पित हो। हमारे गुरु, स्वामी निरंजनानन्द जी वे कल्पतरु हैं जिनकी छाया तले हम योग के इस अछूते पक्ष को एक बार पुन: समाज में स्थापित करने को दृढ़ संकल्पित हैं तथा योग के इस अध्याय को समाज से जोड़ने में समर्थ हो सकेंगे।

परमपूजनीय स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती जी योग के प्रचार-प्रसार की पचास वर्षों की पूँजी को समाज को सौंपकर अपने गुरु के संकल्प को स्थापित करने का डंका बजा चुके हैं जिसकी नयी रूपरेखा भी तैयार कर ली गई है। इसकी बुनियाद के स्वरूप में स्वामीजी ने हमें बतलाया कि एक बार पुन: हमें सनातन पद्धति का अनुसरण करना होगा जहाँ योग का पहला पाठ यम और नियम है। किन्तु आज इनका स्वरूप पहले की अपेक्षा भिन्न है, क्योंकि सामाजिक परिवेश में आमूल परिवर्तन हुए हैं और समाज में कोई विचारधारा तभी स्थापित हो सकती है जब वह परिस्थितिजन्य हो। हमारी आज की सबसे बड़ी आवश्यकता प्रसन्नता की, सकारात्मक सोच की है।

स्वामीजी बतलाते हैं कि हमारे जीवन के दो पक्ष हैं–सांसारिक और आध्यात्मिक। शांतिपूर्ण और सुखमय जीवन के लिए इन दोनों का समन्वय आवश्यक है। हमारी चेतना बहिर्मुखी है, यह उस चुम्बक के समान है जो सांसारिक सुख रूपी लोहे के कणों की ओर आकर्षित होती है। वहाँ यह सुख-दु:ख, प्रेम-

घृणा, मोह-माया रूपी अनुभवों को भोगती है। आध्यात्मिकता उस लकड़ी के टुकड़े के समान है जिसकी ओर चेतना का बहाव है ही नहीं, यद्यपि लकड़ी में ही वह अग्नि तत्त्व विद्यमान है जो प्रज्ज्वलित होकर अंधकार को दूर करने में समर्थ है।

अपने जीवन को सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिए स्वामीजी ने दो सूत्र बतलाए। पहला एक यम है—प्रसन्नता, और दूसरा एक नियम है—जप। वस्तुत: यह आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया है। प्रतिदिन अपनी दिनचर्या का अवलोकन करें और उस क्षण को देखें जब मन शान्त, चिन्तामुक्त और स्वयं में स्थित हो। यही प्रसन्नता का क्षण है। इसे ही प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ाना है और एक दिन यह प्रसन्नता जीवनशैली बन जायेगी। दूसरा सूत्र है जप। सभी जानते हैं कि मन कितना चंचल है। इसे कुछ पल के लिए एक खूँटी से बाँधना है और वह खूँटी है—मंत्र जप। इससे मन के टिकने का प्रशिक्षण मिलेगा। एक महीने तक इसका पालन करें और फिर अगला निर्देश।

सत् संकल्प की डोरी थामे आगे बढ़ते जायेंगे।
चरण तुम्हारे हिय बसाकर मंजिल हम पा जायेंगे॥

अनुपम अनुभव

अरिदमन, सिरसा (योग अध्ययन में डिप्लोमा सत्र, 2015-2016)

कौन कहता है आसमां में छेद नहीं होता।
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो॥

अपने संस्मरण की शुरुआत मैं श्री स्वामी सत्यानंद जी को समर्पित इन पंक्तियों से करना चाहूँगा। हम समझ सकते हैं कि जिन विषम परिस्थितियों और समय में उन्होंने योग का प्रचार-प्रसार किया और विश्व को बिहार योग विद्यालय जैसी सौगात प्रदान की, वह आसमान में छेद करने से कम नहीं है।

बिहार योग विद्यालय में दस माह के प्रवास के बाद ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है। शरीर वही है लेकिन मन-मस्तिष्क, हृदय और 'आत्मा' परिवर्तित है और नि:संदेह पहले से कहीं अधिक निर्मल और शुद्ध है। यहाँ आत्मा को चिन्हित करने का मेरा विशेष प्रयोजन है। पिता की उच्च शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल में हुई थी। तेरह वर्षों तक मैं उनके संस्कारों से पल्लवित हुआ और उसके बाद पत्रकारिता धर्म निभाते उस कलमकार की कलम तोड़ने का कुत्सित प्रयास तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने किया। वास्तव में पिता ही मेरे गुरु थे और उनका साया सर से उठने के बाद मैं उनकी कलम लेकर अपनी कहानी लिखने बैठा, लेकिन अब धर्म, आत्मा, परमात्मा, सब पर से विश्वास उठ चुका था और शायद यही मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी भूल थी।

इसके लगभग तेरह वर्ष बाद जिंदगी फिर करवट लेती है और अगला अध्याय शुरू होता है बिहार योग विद्यालय से। अब मैं इसे अपने गुरु रूपी पिता की अप्रत्यक्ष ऊर्जा का परिणाम ही मानूँगा कि पूरे विश्व में बिहार योग विद्यालय की श्रेष्ठता को पहचान उस ऊर्जा ने मुझे ऐसे गुरुकुल में प्रवेश पाने का अवसर दिया, जिसके बारे में पहले मैं कुछ नहीं जानता था। सांसारिक भागदौड़ और पत्रकारिता से ब्रेक हेतु योग सीखने के लिए यहाँ इतनी लम्बी अवधि के लिए आना वास्तव में मेरी जिंदगी की नाटकीय घटना रही।

आश्रम में मुझे ऐसे अनुभव प्राप्त हुए, जिनसे मैं न केवल शारीरिक और मानसिक, बल्कि आध्यात्मिक चेतना से भी परिपूर्ण हुआ। आसन-प्राणायाम और ध्यान की निरंतर कक्षाओं से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य मिला, तो कर्मयोग से दोनों स्तरों पर शुद्धि हुई। इसमें कोई दो राय नहीं कि शुरुआती दिनों में माहौल से सामंजस्य स्थापित करने में कुछ कठिनाई हुई, लेकिन श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ के बाद स्वयं में परिवर्तन महसूस होने लगा। मैं डिप्लोमा सत्र के उन चुनिंदा विद्यार्थियों में शामिल था जिन्हें यज्ञ के दौरान पूरा समय कार्यक्रम स्थल पर सेवा

करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह उस यज्ञ की ऊर्जा ही मानता हूँ कि उसके बाद मुझे कोई भी कार्य करने में कभी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ।

आश्रम प्रवास के दौरान यूँ तो सभी प्रकार के कार्य किए, लेकिन मेरी सेवा मुख्यत: हिंदी विभाग में रही। यहाँ फिर मैं स्वयं को भाग्यशाली कहूँगा क्योंकि इस दौरान मुझे स्वामी निरंजनानंद जी के नए-पुराने सत्संग सुनने और उनका प्रतिलेखन करने का अवसर प्राप्त होता था। स्वामीजी की तारीफ में कुछ लिखना छोटा मुँह बड़ी बात होगी। केवल इतना कहना चाहूँगा कि उनकी प्रेरणात्मक वाणी मात्र ने ही मुझमें 'आत्मा' का पुनर्वास किया। रविवार के सत्संग या अन्य कार्यक्रमों के दौरान उनके प्रवचन दिल को छू लेते थे। जिंदगी के हर पहलू के सम्बन्ध में उनका अपार ज्ञान और उस ज्ञान को आम आदमी के स्तर पर आकर सरल तरीके से समझाने की उनकी कला का मैं कायल हो गया। चार माह की कठिन पंचाग्नि साधना करते उन तपस्वी के लिए सहसा ही सिर श्रद्धा से झुक जाता है।

एक माह से अधिक समय हमें श्री स्वामी सत्यानंद जी की तपोभूमि, रिखियापीठ में भी व्यतीत करने का अवसर मिला। उस स्थान की तारीफ में जितने कसीदे पढ़े जाएँ, कम हैं। वहाँ तीन-तीन यज्ञों में भाग लेना वास्तव में किसी सौभाग्य से कम नहीं था। 'सेवा, प्रेम और दान' की नींव पर बने उस आश्रम में दैवी ऊर्जा का अद्‌भुत नजारा देखने को मिलता है। सच कहूँ तो वहाँ जाना इस प्रकार लगा जैसे बचपन में स्कूल की एक माह की छुट्टियों के दौरान ननिहाल जाते थे और छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद भी घर वापिस लौटने का मन नहीं होता था!

सत्र के अंत में पाशुपतास्त्र यज्ञ की ऊर्जा लेकर नई चेतना और संस्कारों के साथ घर लौटने के बारे में सोचकर ही मन प्रफुल्लित हो उठता है। आश्रम में अपने सहपाठियों, शिक्षकों व अन्य सभी से बहुत कुछ सीखने को मिला। आश्रम प्रवास के इन दस महीनों के अनुभव के बारे में लिखने को और भी बहुत कुछ है, लेकिन इतना कहकर समाप्त करूँगा कि यहाँ मुझे मेरे पिता और गुरु की इच्छानुसार एक नया जन्म मिला है। आश्रम के बाहर की दुनिया हालाँकि बहुत अलग है, लेकिन मैं इस संकल्प के साथ जा रहा हूँ कि अपने इस नए जन्म में प्राप्त संस्कारों को कलुषित नहीं होने दूँगा और उस समाज में भी इनके साथ सामंजस्य बनाते हुए जीवन व्यतीत करूँगा। और हाँ, बिहार योग विद्यालय के साथ यह रिश्ता प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हर क्षण, हर पल बना रहेगा। स्वामीजी के चरणों में प्रणाम!

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

क्षमा का क्या अर्थ होता है और अपने आप को क्षमा करने का क्या मतलब हुआ ?

हमारे भारत में एक शब्द का उपयोग होता है, 'शील', जिसका मतलब होता है स्वभाव। स्वभाव कितने प्रकार के होते हैं, इनमें कितने प्रकार की अभिव्यक्तियाँ होती हैं, इन सबको देखा जाता है। आखिर व्यवहार में क्रोध भी तो एक अभिव्यक्ति है न। किसी से बात करते-करते अचानक गुस्सा आता है, आदमी उबल पड़ता है। व्यवहार में भय, असुरक्षा, चिंता या परेशानी भी एक अभिव्यक्ति है। जीवन के जो भी व्यवहार अभिव्यक्त होते हैं, उन्हें शील या स्वभाव कहा जाता है।

शील दो प्रकार के होते हैं—अच्छे और बुरे, सकारात्मक और नकारात्मक। जो नकारात्मक स्वभाव हैं वे मनुष्य के जीवन में विक्षेप, उद्विग्नता, चंचलता और अशांति उत्पन्न करते हैं, जबकि सकारात्मक स्वभाव मनुष्य जीवन में धैर्य, क्षमा, प्रेम, करुणा, सहयोग आदि की वृद्धि करते हैं। इसलिए यह प्रश्न करना गलत है कि क्षमा का क्या तात्पर्य है और अपने को कैसे क्षमा किया जाए, बल्कि यह प्रश्न प्रासंगिक है कि हम कैसे अपने जीवन में अच्छे स्वभाव को अपनायें। इसी पर ध्यान देना है।

परिस्थिति और परिवेश अनुसार तो बहुत प्रकार के व्यवहार अभिव्यक्त होते हैं। चिंता, परेशानी, निराशा, अवसाद और तनाव में बहुत प्रकार के व्यवहार अपने ही आप प्रकट होते हैं, और मनुष्य उनसे व्यथित हो जाता है। बाद में जब विचार आता है कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, तब ग्लानि होती है। इसलिए योग में कहा जाता है कि तुम अपने जीवन की सकारात्मक अभिव्यक्ति को पहले पहचानो। एक बार तुम उसे पहचान लेते हो फिर उसे बढ़ाने का प्रयास करो। जब वह तुम्हारे जीवन की सामान्य अभिव्यक्ति हो जाती है तो फिर तामसिक अभिव्यक्ति उत्पन्न होगी ही नहीं। जो व्यक्ति ज्यादा क्रोधी, लड़ाकू, विद्रोही और उद्दण्ड है वह सोच सकता है कि मैं दूसरों को या स्वंय को क्षमा कैसे करूँ। लेकिन वह केवल विचार रहेगा क्योंकि उस व्यक्ति का व्यवहार तो बदल नहीं रहा है।

व्यवहार परिस्थिति अनुकूल होना चाहिए। जैसे ठण्ढ में तुम गर्म कपड़े पहनकर अपने आपको गर्म रखते हो और गर्मी में एक बनियान ही पर्याप्त है, वैसे ही परिवेश और परिस्थिति अनुकूल व्यवहार जीवन के लिए हमेशा प्रासंगिक है। अगर हम एक मान्यता को लेकर चलें कि हमें ऐसा ही होना है तो हो सकता है कि वह दूसरे समय में प्रासंगिक न हो। इसलिए मानसिक लचीलापन प्राप्त करना आवश्यक है।

हम स्वंय को या दूसरों को क्षमा कैसे कर पाएँ, हम अपने क्रोध को कैसे कम करें, यह सब सोचकर हम अपने जीवन की संकीर्णता पर ही ध्यान दे रहे हैं। एक दृष्टान्त देता हूँ। तराजू के दो पलड़े हैं, एक तरफ नकारात्मक व्यवहार और विचार भरे हैं तो दूसरी तरफ सकारात्मक। वज़न किसका ज्यादा रहेगा? नकारात्मक का। अब दूसरे पलड़े को नीचे लाना है तो इसके लिए क्या करोगे? नकारात्मक को हटाओगे? नहीं, बेहतर यह होगा कि अच्छाई को बढ़ाओ ताकि उसका पलड़ा भारी होता जाए और बुराई का पलड़ा हल्का अपने आप हो जाए। जो भोगी होता है, वह सोचता है कि मैं नकारात्मक पलड़े से सामान कैसे हटाऊँ, और उसका ध्यान हमेशा उसी तरफ जाता है, लेकिन जो योगी होता है, जो ज्ञानी होता है वह कहता है, नकारात्मकता तो है ही, क्यों न मैं अच्छाई के पलड़े को भारी करूँ। जैसे-जैसे अच्छाई का पलड़ा भारी होता जाएगा, दूसरा अपने आप हल्का हो जाएगा।

एक और उदाहरण देता हूँ। तुम्हारे पास दो कुत्ते हैं। एक कुत्ते का रंग काला है और दूसरे का सफेद। दोनों में लड़ाई होती है तो कौन जीतेगा? जिसे तुम ज़्यादा खिलाओगे, वही जीतेगा न, क्योंकि वह ज़्यादा बलशाली रहेगा। तुम्हारे भीतर भी यही कहानी चल रही है। दो कुत्ते हैं, एक है नकारात्मक और तामसिक, दूसरा है सकारात्मक और सात्त्विक। तुम्हारे भीतर जब इन दोनों कुत्तों में लड़ाई होती है तो कौन जीतता है? तुम खुद जानते हो। जो जीतता है उसे तुमने ज़्यादा खिलाया है। इसलिए ध्यान देना कि तुम किस कुत्ते को ज़्यादा खिलाते हो, तब फिर तुम्हें खुद समझ आ जाएगा कि दया के लिए क्या करना है, क्षमा के लिए क्या करना है, शान्ति के लिए क्या करना है, दुर्बलता को मिटाने के लिए क्या करना है या विक्षेप को दूर करने के लिए क्या करना है। असली बात यही है कि अच्छाई के क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयास करना है, बुराई को खोद-खोदकर निकालने का प्रयास नहीं।

मानसिक एकाग्रता की जो प्रतिभा है, उसकी चरम सीमा क्या है? उसे किस हद तक बढ़ाया जा सकता है?

तुम्हारे प्रश्न में ही इसका जवाब है। अगर तुम एकाग्रता की चरम सीमा को निश्चित करोगे तो एकाग्रता फिर एकाग्रता नहीं रहेगी। अगर तुम पूर्णता को निश्चित करते हो कि यह पूर्ण है तो फिर उसके बाद क्या? जिस तरह पूर्णता की कोई सीमा नहीं होती, उसी तरह एकाग्रता की कोई सीमा नहीं होती। आखिर मन कोई पदार्थ तो है नहीं। शरीर पदार्थ है, मस्तिष्क पदार्थ है, लेकिन मन का तो कोई पदार्थ रूप है नहीं। मन तो मात्र ऊर्जा स्वरूप है और ऊर्जा को तुम कहाँ तक खींच सकते हो, यह तो तुम पर निर्भर करता है।

जब द्रोणाचार्य अपने विद्यार्थियों की धनुर्विद्या में परीक्षा ले रहे थे तो वह भी तो एकाग्रता का ही खेल था न? चिड़िया की आँख में तीर मारना था, लेकिन सभी

विद्यार्थी अलग-अलग जवाब दे रहे थे। केवल एक विद्यार्थी ने कहा कि मैं चिड़िया की आँख को ही देख रहा हूँ। हर विद्यार्थी में एकाग्रता अलग-अलग स्तर पर थी। अर्जुन की एकाग्रता केवल लक्ष्य को देखती थी, उसके अगल-बगल की किसी चीज को नहीं। बाकी लोग लक्ष्य को तो देखते थे, साथ ही वृक्ष को भी देखते थे, आसमान को भी देखते थे, अपने भाई-बंधुओं को भी देखते थे।

एकाग्रता के अनेक स्तर होते हैं, लेकिन असली एकाग्रता वह है जो तुम्हारे मन को उस बिन्दु में तन्मय कर दे, जिसपर वह टिका है। जब तुम तन्मय हो जाओगे तो मान लेना कि वह एकाग्रता की पूर्णाहुति है। लेकिन जब तक तुम तन्मय नहीं हो, वहाँ पर एकाग्रता हमेशा भंग होती है, तुम्हें बार-बार अपने आपको खींचकर उस बिन्दु पर लाना पड़ता है। तन्मयता में व्यक्ति अपने आप को भूल जाता है, देश-काल-परिस्थिति जैसी सब चीज़ों को भूल जाता है। जब किसी के साथ गप्प लगाते हो तब समय कैसे बीतता है, पता ही नहीं चलता। लेकिन जब किसी की डाँट सुननी हो तो पांच सेकेंड में ही मन भर जाता है। डाँट में तन्मयता नहीं है, लेकिन जब गप्प लगा रहे हैं तो उसमें तन्मयता है। एकाग्रता की परिणति होती है तन्मयता में और तन्मयता को तुम कितने आगे ले जा सकते हो यह तुम्हारे ऊपर है।

–8 फरवरी 2015, गंगा दर्शन

व्यक्त सृष्टि क्या ढोंग है? इसे समझाने की कृपा करें।

यहाँ ढोंग उपयुक्त शब्द नहीं है, सही शब्द है मिथ्या। हमारे शास्त्रों में कहा गया है– *ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या*– यह समस्त संसार मिथ्याबद्ध है और ईश्वर सत्य

है। मिथ्या इसलिये कहा गया कि यहाँ पर कभी भी कोई शाश्वत, स्थाई अनुभव प्राप्त नहीं करता। सुख-दु:ख, अच्छाई-बुराई, शान्ति-अशान्ति के जो भी अनुभव होते हैं वे सब क्षणभंगुर ही माने जाते हैं। समाधि की स्थिति भी कुछ क्षण के लिये ही होती है। उसके बाद फिर संसार की मोह-माया का अनुभव होता है। जब कोई अनुभव स्थिर नहीं, शाश्वत नहीं, जब सब कुछ परिवर्तनशील है तब उसको कहते हैं मिथ्या।

यह जगत् आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भले ही मिथ्या है, पर भौतिक दृष्टिकोण से सत्य ही है। जिस समय हमें कष्ट का, दु:ख का, सुख का, दर्द का या आनन्द का अनुभव होता है, उस समय वह हमारे लिये सत्य है। एक तमाचा किसी को पड़ जाए तो उससे जो दर्द होता है वह मिथ्या है क्या? दर्द का अनुभव तो कर रहे हो, आँसू तो निकल रहे हैं, क्या वह मिथ्या है? नहीं, भौतिक जगत् में वह सत्य है और आध्यात्मिक में वह मिथ्या है। हमारे मनीषियों के अनुसार जो संसार से जुड़े हैं, उनके लिये जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या, और जो अध्यात्म से जुड़े हैं, उनके लिये ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या। यह दृष्टिकोण की बात है।

अब इसके बारे में क्या कहा जाए और क्या किया जाए? जो कुछ अनुभव कर रहे हो, करते जाओ और उसे सम्भालते जाओ। अगर भूख लगती है तो इसे मिथ्या मानकर बैठे तो नहीं रहोगे। मिथ्या मानकर आखिर कितनी देर भूखे-प्यासे बैठ पाओगे? भले ही यह मिथ्या हो, लेकिन तुम्हें इसकी आवश्यकता है। पूरा करो। घर-परिवार, बन्धु-सखा, बीवी-बच्चे—ये सब मिथ्या हैं या सत्य? भौतिक दृष्टि से सत्य हैं। भले ही आध्यात्मिक दृष्टि से वह मिथ्या हो, पर जिस भौतिक सत्य में हम रहते हैं, क्यों न उसे सुधारने और सुखद बनाने का प्रयास करें? जब हमारी यह 'मिथ्या' जिंदगी सुखद और सहज हो जाती है, तब फिर ब्रह्म भी सहज उपलब्ध हो जाता है।

दर्शन की बात अलग है, लेकिन व्यक्ति का प्रयास और पुरुषार्थ दर्शन को अनुभव से जोड़कर जीवन में एक सुन्दर अभिव्यक्ति लाता है। इसलिये यह सोचना छोड़ दो कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य या ब्रह्म मिथ्या है और जगत् सत्य। यह सोचकर पुरुषार्थ आरम्भ करो कि हम तो सत्य हैं, भले जगत् मिथ्या हो या ब्रह्म। जिस सत्य को हम अनुभव कर रहे हैं उसे अच्छे से विकसित करने का, बढ़ने का, पनपने का, सुन्दर, सौम्य, शान्त और रचनात्मक बनने का एक अवसर अवश्य प्रदान किया जाए। यह चिंतन है एक साधक का, जो यह नहीं सोचता कि जगत् मिथ्या है या ब्रह्म, बल्कि यह सोचता है कि किस प्रकार अपने जीवन को सुन्दर बना सकूँ जिसे देखकर दूसरे लोग भी अपने जीवन को उत्तम बनाने की प्रेरणा प्राप्त करें। इसलिये साधक बनो।

—17 मई 2015, गंगा दर्शन

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग साधना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 450, ISBN: 978-81-86336-10-6

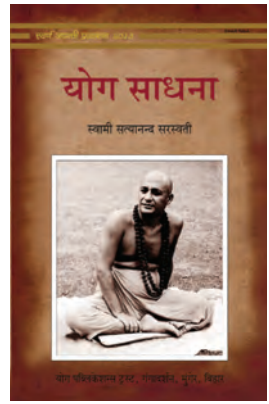

'योग साधना' स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा अपने गृहस्थ शिष्यों को लिखे पत्रों का संकलन है, जिसने कितने ही लोगों के जीवन में आनन्द की किरणें बिखेरी हैं। श्री स्वामीजी के ये पत्र हर एक व्यक्ति के लिए प्रेरणास्रोत हैं। साधक की साधना का, गृहस्थ की उलझन का, मुमुक्षु की जिज्ञासा का सामाधान 'योग साधना' में प्राप्त होगा।

अध्यात्म के कठिन पथ पर नयी दिशा, उत्साह, प्रेरणा एवं शान्ति देने के लिए यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

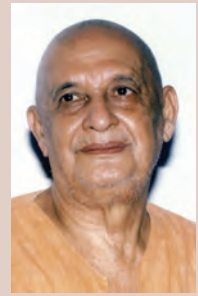

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में खोजने की सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

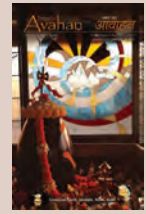

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ के कार्यक्रम एवं प्रशिक्षण 2016

जुलाई 15-18	गुरु पूर्णिमा सत्संग कार्यक्रम (हिन्दी/अंग्रेजी)
जुलाई 19	गुरु पादुका पूजन
सितम्बर 24-30	हठ योग–षट्कर्मों का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
अक्टूबर 3-30	प्रगतिशील योगविद्या प्रशिक्षण (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3- जनवरी 29	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अंग्रेजी)
अक्टूबर 22-28	राज योग–आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 5-11	क्रिया योग–प्रारम्भिक (हिन्दी/अंग्रेजी)
नवम्बर 7- फरवरी 7 2017	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (अंग्रेजी)
दिसम्बर 19-23	योग चक्र शृंखला (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।